

**TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY**

**TIGHT BINGING
BOOK**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180968

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—552—7-7-66 —10,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. **H83** Accession No. **P. G. #576**
C49B

Author **चट्टोपाध्याय, शरत्चन्द्र**

Title **विराजवद्ध अनु. ठाकुरदत्तमिश्र**
1945

This book should be returned on or before the date
last marked below,

वि रा ज ब हू

शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय

अनुवादक

पं० ठाकुरदत्त मिश्र

किताब महल

प्रयाग

द्वितीय संस्करण १९४५

इस अनुवाद के सब अधिकार प्रकाशक के हैं

प्रकाशक :—किताब महल, इलाहाबाद
मुद्रक :—मगनकृष्ण दीक्षित, जगत प्रेस,
इलाहाबाद

बिलज बहू

(५६०)

बंगाल के हुगली ज़िने में मसग्राम नामक एक गाँव था । वहाँ पर नीलाम्बर चक्रवर्ती और पीताम्बर चक्रवर्ती नामक दो व्यक्ति रहा करते थे । वे दोनों भाई-भाई थे । नीलाम्बर चक्रवर्ती में कई विशेषतायें थीं । जब कभी वह किसी का मृत्यु का संवाद पाता तब उसके दाह-संस्कार में उसके परिवारवालों की सहायता करने के लिए झूटपट तैयार हो जाता । वह खूब भजन गाता, ढोलक बजाता और दम लगाया करता । इन सब बातों में उस ज्वार में वह अपना सानो नहीं रखता था । नीलाम्बर के ऊँचे-पूरे और गोरे रंग के शरीर में अमाधारण बल था । गाँव में एक परोपकारी के रूप में उसका बड़ी प्रशंसा थी । परन्तु उसकी निन्दा करनेवालों का भी अभाव नहीं था । कितने ही लोग कहा करते थे कि नीलाम्बर चक्रवर्ती बड़ा गँवार है ।

नीलाम्बर का छोटा भाई पीताम्बर बिलकुल भिन्न प्रकृति का मनुष्य था । वह नीलाम्बर की तरह ऊँचा-पूरा और माटा-नाज़ा भी नहीं था । दुबला-पतला और ठिगना-सा उसका शरीर था । किसी की मृत्यु का समाचार मिलते ही उसके हाथ-पाँव फूल आते थे । बड़े भाई की तरह वह नितान्त ही अलौकिक भी नहीं था । कभी भूल कर भी वह कोई वैसा कार्य नहीं करता था, जिसके कारण उसके ऊपर गँवार होने का दोष लगाया जा सकता ।

प्रातःकाल भोजन आदि से निवृत्त होकर पीताम्बर बगल में बस्ता दबाये हुए घर से निकल पड़ता । हुगली की कचहरी में पहुँच

कर वह एक बरगद के वृक्ष के नीचे अपना आसन लगा लेता । वहीं बैठे-बैठे वह दिन भर लोगों की अर्ज़ियाँ लिखा करता । इस प्रकार उसे जो कुछ मिल जाता, वह लेकर साँझ होने से पहले घर पहुँच जाया करता और घर में पहुँचते ही अपनी दिन भर की कमाई की सारी रकम सन्दूक में बन्द करके रख दिया करता । रात्रि में सोने से पहले पीताम्बर घर के दरवाज़े और खिड़कियों अपने हाथ से बन्द कर दिया करता था, साथ ही वह स्त्री से उन्हे कई बार देखवा लेने के बाद सोया करता था ।

आज प्रातःकाल नीलाम्बर देवी जी के मन्दिर के एक किनारे पर बैठे-बैठे तम्बाकू पी रहा था । इतन में उसकी अविवाहिता बहन हरिमति चुपचाप आई और उसके पीछे घुटनों के बल बैठ गई । बड़े भाई की पीठ में मुँह छिपा कर वह रोने लगी । नीलाम्बर ने दीवाल के सहारे से हुक्का रख दिया । उसने अन्दाज़ से अपना हाथ बढ़ा कर बहन के मस्तक पर रक्खा । बाद को स्नेह-पूर्वक उसने कहा—सवेरे ही सवेरे तुम क्यों रोने लगी हो बहन ?

हरिमति अपना मुँह रगड़ कर बड़े भाई की सारी पीठ भिगोते-भिगोते बोली—भाभी जी ने मेरे गाल पर चपत जमा दी है, और कानी कह कर मुझे गाली दी है ।

नीलाम्बर ने हँस कर कहा—वह कानी कहती है तुम्हें ? ऐसी अच्छी-अच्छी आँखें होते हुए भी जो तुम्हें कानी कहती है, कानी वही है । परन्तु तुम्हारे गाल पर उसने चपत क्यों जमा दी ?

हरिमति ने रोते-रोते कहा—भूठ-मूठ के ।

“भूठ-मूठ के ? अच्छा चलो, देखता हूँ ।” यह कह कर

बहन का हाथ पकड़े हुए घर आकर नीलाम्बर ने पुकारा—
“विराज बहू !”

बड़ी बहू का नाम था विराज बहू। नौ वर्ष की ही अवस्था में उसका विवाह हुआ था। इससे यहाँ जब वह आई थी, तब से विराज बहू के ही नाम से प्रसिद्ध हो गई थी। जिस समय की यह बात है, उस समय विराज बहू की अवस्था उन्नीस या बीस वर्ष की थी। सास की मृत्यु के बाद से वही गृहिणी थी।

विराज बहू की-सी सुन्दरी स्त्रियाँ माधारण तौर से बहुत कम पाई जाती हैं। ‘सप्तग्राम’ या ग्राम-पास के अन्य ग्रामों में तो वैसी सुन्दरी कोई स्त्री थी ही नहीं। चार-पाँच वर्ष पहले उसे एक पुत्र हुआ था, किन्तु वह सूतिकागार में ही उसकी गोद सूती करके इस संसार से विदा हो गया था। तब से वह निस्सन्तान ही थी। जिस समय नीलाम्बर ने घर में जाकर पुकारा, उस समय वह रमोई-घर में थी और भोजन बनाने की व्यवस्था कर रही थी। स्वामी के पुकारने पर वह वहाँ से निकल आई। परन्तु भाई-बहन को एक साथ देखते ही वह जल उठी। उग्र स्वर में वह बोली—क्यों री मुँहजली, तू फिर दौड़ी गई थी नालिश करने के लिए ?

नीलाम्बर ने कहा—यह जायगी क्यों नहीं ? तुमने जो इसे कानी कहा है, उससे इसको कोई हानि नहीं है; क्योंकि यह बात झूठी है और इस तरह की झूठी बात मुँह से निकालने के कारण पाप का भागी तुम्हें ही होना पड़ेगा। परन्तु तुमने भला इसके गाल पर चपत क्यों जमा दी ?

विराज ने कहा—यह इतनी बड़ी लड़की है, परन्तु इसे

ज़रा भी ज्ञान नहीं है । सोकर उठने के बाद न तो इसने आँख-मुँह धोया और न कपड़े बदले, सीधे गोशाले में पहुँची । वहाँ बछड़ा खोल कर मुँह बाये हुए ताकने लगी । आज एक बूँद भी दूध नहीं मिल सका । इसे तो खूब पीटना चाहिए ।

नीलाम्बर ने कहा—नहीं, तुम्हें चाहिए था कि तुम गोशाला में नौकरानी को भेज देती । किन्तु, क्यों बहन, तू भला एकाएक बछड़ा खोलने के लिए क्यों दौड़ी गई ? यह कार्य तेरा तो है नहीं ?

बड़े भाई के पीछे खड़े-खड़े हरिमति ने धीरे-धीरे कहा—मैंने समझा था कि दूध दुहा जा चुका है ।

“ऐसा अब कभी मत करना ।” यह कह कर विराज फिर रसोई-घर में प्रवेश करने जा रही थी, इतने में नीलाम्बर ने हँस कर कहा—तुमने भी इसकी जैसी अवस्था में माँ की चिड़िया उड़ा दी थी । पींजड़े का द्वार तुमने खोल दिया था । उस समय तुम्हारा ख्याल था कि पींजड़े में रहनेवाली चिड़िया उड़ नहीं सकती । तुम्हें यह बात स्मरण है न ?

विराज लौट कर खड़ी हो गई । मुस्करा कर वह बोली—स्मरण तो है । परन्तु उस समय मेरी अवस्था इतनी नहीं थी, और कम थी । यह कह कर वह वहाँ से चली गई और अपने काम में लग गई ।

हरिमति ने कहा—चलो भैया, बगीचे में चल कर ज़रा देखें तो कि आम पक रहे हैं या नहीं ?

“अच्छी बात है । चलो बहन ।”

यदु नामक नौकर ने घर के भीतर जाकर कहा—नारायण बाबा बैठे हुए हैं ।

नीलाम्बर कुछ सङ्कुचित-सा हो उठा । उसने बहुत ही मन्द स्वर में कहा—अभी ही वे आकर बैठ गये ?

यह बात कानों तक पहुँचते ही विराज तेज़ी से पैर बढ़ाती हुई रसोई-घर से निकल आई । ऊँचे स्वर में वह बोली—चाचा से कह दो कि वे लौट जायँ । बाद को स्वामी की ओर ताक कर उसने कहा—सवेरे-सवेरे ही यदि वे लोग खायँगे तब तो मैं माथा पटक-पटक कर मर जाऊँगी । क्या हो रहा है यह सब आजकल ?

नीलाम्बर ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया । बहन का हाथ पकड़े हुए वह चुपचाप बगीचे में चला गया ।

इस बगीचे के एक किनारे से सरस्वती नाम की एक पतली-सी नदी बहा करती थी । उसकी क्षीण और मन्द धारा परलोक की यात्रा के लिए बिलकुल तैयार बैठे हुए व्यक्ति के श्वास-प्रश्वास की तरह उस समय भी बह रही थी । नदी का सारा पाट शैवाल से भरा था । ग्रामवासियों ने जल भरने के लिए कहीं-कहीं नदी के बीच में जो छोटे-छोटे कुए खोद रखे थे, केवल वहीं पर अवश्य शैवाल नहीं थे । उन कुओं के आस-पास छोटे-छोटे सोते भी थे, जिनमें शैवाल नहीं था । वे सोते जल से भरे हुए थे । किन्तु उनकी गहराई बहुत कम थी । इसलिए सोतों के पेंदों में जो सूतियाँ पड़ी हुई थीं, वे सूर्य के प्रकाश में स्वच्छ जल के भीतर से चमचमा कर इस तरह सुशोभित हो रही थीं, मानो जल के भीतर हज़ारों मणि बिखरे पड़े हों । नदी

के तट पर काले रंग का एक पत्थर पड़ा हुआ था । समीप ही एक समाधि-स्तूप था । वह पत्थर उसी की चहारदीवारी का था । किसी अतीत काल में वर्षा के प्रखर प्रवाह में वह दीवार से निकल गया था, और प्रवाह के साथ खिसकते-खिसकते वहाँ तक पहुँच गया था । नीलाम्बर के घर की स्त्रियाँ प्रतिदिन साँझ के समय एक दीपक जला कर मृत आत्मा के निमित्त उस पत्थर के एक किनारे पर रख जाया करती थीं । नीलाम्बर बहन का हाथ पकड़े हुए आया और उसी पत्थर पर बैठ गया । नदी के दोनों ही तटों पर आम के बड़े-बड़े बगीचे और बाँस की कोठें थीं । दो एक पीपल और बरगद के भी वृक्ष थे । वे वृक्ष बहुत पुराने थे और झुककर नदी के ऊपर तक अपनी शाखायें फैलाये हुए थे । उनकी शाखाओं पर कितने काल से कितने पक्षी अपने घोंसले बनाते आये थे, कितने बच्चों का पालन-पोषण करके उन सब ने उन्हें बड़ा किया था, कितने फल खाये थे, कितना कलरव किया था । ऐसे ही एक वृक्ष की शीतल छाया में उन भाई-बहन ने थोड़ा-सा समय चुपचाप व्यतीत किया ।

एकाएक हरिमति भाई की गोद के और समीप आ गई— और वह बोली—अच्छा भैया, भाभी तुम्हें साधू कह कर क्यों पुकारती हैं ?

नीलाम्बर ने गले में पड़ी हुई तुलसी की माला बहन को दिखला कर हँसते हुए कहा—मैं साधू हूँ, इसीलिए ।

हरिमति भाई की इस बात पर विश्वास नहीं कर सकी । वह बोली—तुम क्यों साधू होओगे भैया ? साधू लोग तो भिक्षा

माँगते फिरते हैं । अच्छा भैया, भला वे लोग भिक्षा क्यों माँगा करते हैं ?

“उनके पास कुछ होता नहीं, इसीलिए वे भिक्षा माँगा करते हैं ।”

भाई के मुँह की ओर ताकते हुए हरिमति ने कहा—उन लोगों के पास कुछ नहीं होता ! तालाब, बग़ीचा, धान की बख़ार आदि कुछ भी नहीं होता ?

बहन के मस्तक के बालों के बीच में स्नेहपूर्वक उँगलियाँ फेरते-फेरते नीलाम्बर ने कहा—कुछ नहीं बहन, उन लोगों के पास कुछ नहीं होता । साधू को अपने पास कोई चीज़ रखनी भी न चाहिए ।

हरिमति ने कहा—तो सभी लोग उन्हें थोड़ा-थोड़ा करके क्यों नहीं दिया करते ?—

नीलाम्बर ने कहा—तेरे भैया ने ही साधुओं को कब क्या दिया है री पगली ?

“क्यों नहीं दिया भैया, हम लोगों के पास तो इतनी-इतनी चीज़ें हैं ।”

नीलाम्बर ने मुस्कराते हुए कहा—किन्तु तो भी तो तेरा भैया कुछ दे नहीं पाता । जब राजा के साथ तेरा विवाह हो जायगा, तू जब रानी हो जायगी, तब तू साधुओं को खूब भोजन-वस्त्र देना बहन ।

हरिमति अभी केवल एक अबोध बालिका थी । तो भी भाई की इस बात से लज्जित होकर उसने उसकी गोद में अपना मुँह छिपा लिया और कहा—जाओ ।

नीलाम्बर ने दोनों ही हाथों से पकड़ कर बहन का मस्तक चूम लिया । माता-पिता की गोद से बिछुड़ी हुई अपनी इस छोटी बहन को वह कितना प्यार किया करता था, इसकी सीमा नहीं थी । आज से सात वर्ष पहले ससकी विधवा माता ने हरिमति को बड़े बेटे और बहू को सौंप कर जिस समय इस संसार से अपना सम्बन्ध-विच्छेद किया था, उस समय वह केवल तीन वर्ष की थी । तब से नीलाम्बर ही उसका पालन-पोषण करता आ रहा था । गाँव के समस्त रोगियों की वह सेवा किया करता था, मुर्दों के दाह-संस्कार में उनके घरवालों की सहायता किया करता था, भजन गाया करता था, और खूब दम लगाया करता था । परन्तु माता के उस अन्तिम आदेश की अवहेलना उसने कभी एक क्षण के लिए भी नहीं की । बड़े प्यार से गोद में लिये रह कर उसने बहन को इतनी बड़ी किया था । यही कारण था कि हरिमति माता के समान ही बड़े भाई की गोद में निस्सङ्कोच भाव से सुख रखे हुए चुपचाप पड़ी रही ।

किसी चीज़ की आड़ से पुरानी नौकरानी का कण्ठ-स्वर सुनाई पड़ा—पुटी, तुम्हें बहूजी बुला रही हैं । आओ, दूध पी जाओ ।

मुख उठा कर हरिमति ने अनुनयपूर्ण स्वर में कहा—भैया, तुम ज़रा कह दो कि इस समय मैं दूध न पीऊँगी ।

“क्यों न पिओगी बहन ?”

हरिमति ने कहा—अभी तक मुझे ज़रा भी भूख नहीं लगी है ।

नीलाम्बर ने कहा—तुम्हारी इस बात पर मैं भले ही विश्वास कर लूँ, परन्तु जिसकी गाल पर चपत लगा देने की आदत है, वह तो इस बात पर विश्वास करने को है नहीं।

आड़ में खड़े ही खड़े नौकरानी ने फिर पुकारा—पुटी।

नीलाम्बर ने उतावली के साथ उठाकर हरिमति को खड़ी कर दिया। वह बोला—बहन जा, तू कपड़े बदल कर दूध पी ले, तब यहाँ आ। मैं यहाँ बैठा हूँ।

हरिमति मुग्न पर अप्रमत्तता का भाव प्रकट करती हुई चली गई।

जिस दिन की यह बात है, उसी दिन दोहर को विराज स्वामी के लिए भोजन परोस कर थाली के पास ही बैठ गई और बोली—“अच्छा, तुम्हीं बताओ कि किस चीज़ के साथ मैं तुम्हारी थाली में रोज़-रोज़ भात परोसा करूँ ? तुम कहते हो कि मैं यह न खाऊँगा, वह न खाऊँगा। सभी चीज़ों से तो परहेज़ है तुम्हें। अन्त में मछली तक खाना छोड़ दिया तुमने।

नीलाम्बर भोजन करने के लिए बैठ गया। वह बोला—देखो न, तुमने कैसे अच्छी-अच्छी तरकारियाँ बनाई हैं ?

अच्छी क्या बनाई हैं ? इस तरह की सूखी-रूखी तरकारियों के साथ भला कहा पुरुष लोग भात खाया करते हैं ? यह शहर तो है नहीं कि जिस चीज़ की ज़रूरत हो, वही चीज़ खरीद ली जाय। यह तो देहात ठहरा। यहाँ यदि किसी चीज़ का सहारा है, तो वह है तालाब की मछलियों का। इधर मछलियाँ खाना भी तुमने छोड़ दिया है। पुटी ! कहाँ गई तू ? आ, ज़रा हवा तो कर।—नहीं, ऐसा नहीं होने पावेगा। आज यदि कहीं ज़रा-

नीलाम्बर ने दोनों ही हाथों से पकड़ कर बहन का मस्तक चूम लिया । माता-पिता की गोद से बिछुड़ी हुई अपनी इस छोटी बहन को वह कितना प्यार किया करता था, इसकी सीमा नहीं थी । आज से सात वर्ष पहले ससकी विधवा माता ने हरिमति को बड़े बेटे और बहू को सौंप कर जिस समय इस संसार से अपना सम्बन्ध-विच्छेद किया था, उस समय वह केवल तीन वर्ष की थी । तब से नीलाम्बर ही उसका पालन-पोषण करता आ रहा था । गाँव के समस्त रोगियों की वह सेवा किया करता था, मुर्दों के दाह-संस्कार में उनके घरवालों की सहायता किया करता था, भजन गाया करता था, और खूब दम लगाया करता था । परन्तु माता के उस अन्तिम आदेश की अवहेलना उसने कभी एक क्षण के लिए भी नहीं की । बड़े प्यार से गोद में लिये रह कर उसने बहन को इतनी बड़ी किया था । यही कारण था कि हरिमति माता के समान ही बड़े भाई की गोद में निस्सङ्कोच भाव से मुग्न रखे हुए चुपचाप पड़ी रही ।

किसी चीज़ की आड़ से पुरानी नौकरानी का कण्ठ-स्वर सुनाई पड़ा—पुटी, तुम्हें बहूजी बुला रही हैं । आओ, दूध पी जाओ ।

मुख उठा कर हरिमति ने अनुनयपूर्ण स्वर में कहा—भैया, तुम ज़रा कह दो कि इस समय मैं दूध न पीऊँगी ।

“क्यों न पिओगी बहन ?”

हरिमति ने कहा—अभी तक मुझे ज़रा भी भूख नहीं लगी है ।

नीलाम्बर ने कहा—तुम्हारी इस बात पर मैं भले ही विश्वास कर लूँ, परन्तु जिसकी गाल पर चपत लगा देने की आदत है, वह तो इस बात पर विश्वास करने को है नहीं।

आड़ में खड़े ही खड़े नौकरानी ने फिर पुकारा—पुटी।

नीलाम्बर ने उतावली के साथ उटाकर हरिमति को खड़ी कर दिया। वह बोला—बहन जा, तू कण्डे बदल कर दूध पी ले, तब यहाँ आ। मैं यहाँ बैठा हूँ।

हरिमति मुख पर अप्रमत्तता का भाव प्रकट करती हुई चली गई।

जिस दिन की यह बात है, उसी दिन दोपहर को विराज स्वामी के लिए भोजन परोस कर थाली के पास ही बैठ गई और बोली—“अच्छा, तुम्हीं बताओ कि किस चीज़ के साथ मैं तुम्हारी थाली में रोज़-रोज़ भात परोसा करूँ ? तुम कहते हो कि मैं यह न खाऊँगा, वह न खाऊँगा। सभी चीज़ों से तो परहेज़ है तुम्हें। अन्त में मछली तक खाना छोड़ दिया तुमने।

नीलाम्बर भोजन करने के लिए बैठ गया। वह बोला—देखो न, तुमने कैसी अच्छी-अच्छी तरकारियाँ बनाई हैं ?

अच्छी क्या बनाई हैं ? इस तरह की सूखी-सूखी तरकारियों के साथ भला कहां पुरुष लोग भात खाया करते हैं ? यह शहर तो है नहीं कि जिस चीज़ की ज़रूरत हो, वही चीज़ खरीद ली जाय। यह तो देहात ठहरा। यहाँ यदि किसी चीज़ का सहारा है, तो वह है तालाब की मछलियों का। इधर मछलियाँ खाना भी तुमने छोड़ दिया है। पुटी ! कहाँ गई तू ? आ, ज़रा हवा तो कर।—नहीं, ऐसा नहीं होने पावेगा। आज यदि कहीं ज़रा-

सा भी भात थाली में पड़ा रह जायगा, तो मैं तुम्हारे पैरों पर सिर पटक-पटक कर प्राण दे दूँगो ।

नीलाम्बर मुँह से कोई बात निकाले बिना ही मुस्कराते-मुस्कराते भोजन करने लगा ।

विराज ने क्रुद्ध भाव से कहा—क्या हँसते हो तुम ? मेरे शरीर में तो आग-सी लग रही है । दिन-दिन तुम्हारी खूराक टूटती जा रही है, इम बात का ज्ञान क्या तुम्हें है ? शरीर की हड्डी-हड्डी तक दिखाई पड़ने लगी है, क्या इस ओर भी कभी तुम्हारा ध्यान गया है ? ज़रा देखो तो अपने शरीर का हाल ।

नीलाम्बर ने कहा—हाँ, मेरा ध्यान गया है । यह तुम्हारे मन का भ्रम है ।

विराज ने कहा—मेरे मन का भ्रम है यह ? किसी दिन गिन कर एक भी चावल यदि तुम कम खाओ तो मैं बता सकती हूँ । साथ ही तुम्हारे शरीर में यदि कहीं रक्ती भर भी दुबलापन आवे तो मैं तुम्हारे अङ्ग-अङ्ग पर उँगली रख कर बता सकती हूँ कि कहाँ पर कितना दुबलापन आया है । तुम क्या जानो कि कितनी सावधानी के साथ मैं हर एक बात पर दृष्टि रखती हूँ । जा तो पुटी, पंखा रख कर रसोई-घर से अपने भैया का दूध तो ले आ ।

हरिमति ने एक किनारे पर खड़े-खड़े हवा करना आरम्भ कर दिया था । भावज की आज्ञा पाते ही पंखा रख कर वह दूध लेने के लिए चली गई ।

विराज ने फिर कहा—धर्म-कर्म करने के लिए अभी बहुत दिन पड़े हैं । आज उस घर की बुआ जी आई हुई थीं । तुम्हारा

हाल सुनकर उन्होंने कहा कि इतनी कम अवस्था में मछली खाना छोड़ देने पर नेत्रों की ज्योति कम हो जाती है, साथ ही शरीर में निर्बलता आ जाती है। नहीं, नहीं, यह न होने पावेगा। अन्त में जाकर न जाने क्या से क्या हो जाय ? तुम्हें मैं किसी प्रकार भी मछली न छोड़ने दूँगी।

नीलाम्बर हँस पड़ा। वह बोला—मेरी ओर से तू ही न ढेर की ढेर मछलियाँ खा लिया कर। तेरे खाने से ही मेरे शरीर को भी लाभ हो जायगा।

विराज क्रुद्ध हो उठी। उसने कहा—नीच जाति के लोगों की तरह फिर तुकारना आरम्भ कर दिया तुमने ?

कुछ सङ्कुचित-सा होकर नीलाम्बर कहने लगा—स्मरण नहीं रहता री। छुटपन की आदत छूटना ही नहीं चाहती। मैंने कितने बार तेरे कान ऐंठे हैं ! स्मरण है तुम्हें ?

विराज मुँह मूँदकर हँसने लगी। वह बोली—भला स्मरण नहीं है ? मुझे छोटी पाकर मेरे ऊपर तुमने कितना अत्याचार किया है ! बाबू जी से छिपाकर, माँ से छिपा कर तुमने मुझसे कितनी चिलमें चढ़वाई हैं ! तुम भी क्या साधारण दुष्ट हो !

नीलाम्बर ठहाका मार कर हँस पड़ा। बाद को उसकी हँसी जब कुछ कम हुई, तब उसने कहा—तो आज भी सारी बातें स्मरण हैं तुम्हें ? किन्तु प्यार मैं तुम्हें उसी समय से करने लगा था।

अपनी हँसी दबाकर विराज ने कहा—मैं यह जानती हूँ। किन्तु अब यह सब बकने को रहने दो, पुटी आ रही है।

हरिमति ने दूध का कटोरा बड़े भाई की थाली के पास रख

दिया और वह फिर पहले की ही तरह हवा करने लगी । विराज उठी और हाथ धोकर फिर स्वामा के समीप आ बैठी । उसने कहा—पंखा मुझे दे दे पुटी, तू जाकर खेल ।

पुटी के चले जाने पर पंखा झलते-झलते विराज ने कहा—सच कहती हूँ, इतनी छोटी अवस्था में विवाह होना अच्छा नहीं है ।

नीलाम्बर ने कहा—भला अच्छा क्यों नहीं है ? मैं तो समझता हूँ कि कन्याओं का विवाह छुटपन में ही हो जाना अच्छा है ।

विराज ने मस्तक हिलाकर कहा—नहीं, यह ठीक नहीं है । मेरी बात अलग है । कारण यह है कि मैं तुम्हारे हाथ में पड़ गई थी । इसके सिवा मेरे कोई दुष्ट और अत्याचार-परायण जेठानी या ननद भी नहीं थी । दस वर्ष की अवस्था से ही मैं गृहस्वामिनी हूँ । परन्तु और दस आदमियों के घरों का हाल तो देख रही हूँ मैं । यह जो छोटी अवस्था से ही डाँट-फटकार और मार-पीट आरम्भ हो जाती है, उसका अन्त अवस्था अधिक हो जाने पर भी नहीं होता । कम से कम डाँट-फटकार तो जारी ही रहती है । यही कारण है कि मैं अपना पुटी के विवाह की बात अभी ज़बान पर भी नहीं आने देती । अन्यथा उसके विवाह के लिए कहीं न कहीं बातचीत चलाई ही जाती । परसों तो राजेश्वरीतला के घोषाल-परिवार की पुरोहितानी इसके विवाह के सम्बन्ध में टोह लेने भी आई थी । वह तो कह रही थी कि घोषाल महोदय की बड़ी आकांक्षा है हमारी पुटी को अपने घर की बहू बनाने की । वे इसके लिए काफ़ी खर्च भी करना चाहते हैं । पुरोहितानी

तो यहाँ तक कह रही थी कि यदि हम लोग घोषाल-महोदय के पुत्र के साथ पुटी का विवाह कर दें तो वे बधू को शरीर के सभी अङ्गों के आभूषण देंगे, साथ ही हम लोगों को हजार रुपये नक़द भी देंगे। किन्तु मैंने उससे कह दिया कि अभी दो वर्ष मैं अपनी पुटी का विवाह न करूँगी।

नीलाम्बर ने मुग्न उठा कर चकित भाव से पत्नी की ओर देखा। उसने कहा—तो क्या तू रुपये लेकर पुटी का विवाह करेगी? कन्या-विक्रय करने की तेरी इच्छा है क्या री?

विराज तड़ाक से धोल उठी—भला रुपये क्यों न लूँगी? मेरे ही यदि कोई लड़का होता, तो क्या रुपये देकर उसके लिए कहीं से कन्या न ले आनी पड़ती? मुझे ही क्या तीन सौ रुपये देकर तुम लोग नहीं ख़रीद ले आये हो? तुम्हारे छोटे भाई के ही विवाह में क्या पाँच सौ रुपये नहां देने पड़े? जब ऐसी बात है, तब मैं ही पुटी के विवाह में रुपये क्यों न लूँ? इस विषय में तुम्हारे बोलने की कोई आवश्यकता नहीं है। हमारे यहाँ का जो नियम है, उसी के अनुसार मैं कार्य करूँगी।

पत्नी की इस बात से नीलाम्बर और भी अधिक आश्चर्य में पड़ गया। उसने अप्रसन्न भाव से कहा—हमारे यहाँ का नियम कन्या-विक्रय करना है, यह बात तुझसे किसने बतलाई? हमारे परिवार के लोगों को लड़कों के विवाह के लिए कन्या-पक्ष के लोगों को कुछ रुपये दे देने पड़ते हैं, किन्तु कन्या के विवाह में वर पक्ष से हम लोग एक पैसा भी नहीं लेते। घर से यथा-शक्ति दस रुपये देकर ही मैं पुटी का भी विवाह करूँगा। मैं उसका धर्म-विवाह करूँगा।

स्वामी के मुख और नेत्रों का भाव ताक कर विराज एका-
 एक हँस पड़ी। वह बोली—अच्छा, ऐसा ही करना। इस समय
 तुम भोजन तो करो। कहीं अप्रसन्न होकर भूखे ही न उठ जाना।

नीलाम्बर भी हँसा। वह बोला—क्या मैं कभी अप्रसन्न
 होकर भूखा उठ जाता हूँ ?

विराज ने कहा—नहीं, एक दिन भी नहीं। तुम्हारे ऊपर
 इस दोष का आरोपण तो तुम्हारे शत्रु भी नहीं कर सकते। इसके
 लिए कितने दिन मुझे उपवास करके काट देने पड़े हैं, यह बात
 छोटी बहू जानती हैं।—यह क्या ? भोजन हो गया तुम्हारा ?

विराज ने व्यग्र भाव से पंखा फेंक दिया। दूब का कटोरा
 उसने ज़ोर से पकड़ लिया। वह बोली—तुमको हमारे सिर का
 सौगन्ध है। अभी तुम उठो मत। ओ पुटी, दौड़ तो जा, छोटी
 बहू से दो सन्देश माँग ले आ। नहीं, नहीं, मस्तक हिलाने से
 काम न चलेगा। तुम्हारा पेट कभी नहीं भरता। बाप रे ! सच
 कहती हूँ, फिर मैं भी भूखी ही रह जाऊँगी। एक बजे रात तक
 जागती रह कर मैंने सन्देश बनाये हैं।

एक तस्तरी में सजा कर बहुत-सा सन्देश रक्खा हुआ था।
 वह सब का सब लाकर हरिमति ने अपने बड़े भाई की थाली
 के पास रख दिया।

नीलाम्बर हँस पड़ा। वह बोला—अच्छा, तुम्हीं बताओ,
 भला मैं इस समय इतने सन्देश खा सकता हूँ ?

विराज ने देखा कि तस्तरी में कितनी मिठाई रक्खी हुई
 है। उसके बाद मुँह नीचा करके वह बोली—मिठाइयों की

तरफ़ तुम ध्यान मत रखो और बातें करते-करते खाते रहो ।
इस प्रकार खा जाओगे ।

“किन्तु खाना पड़ेगा ही ?”

विराज ने कहा—हाँ । या तो तुम मछली न छोड़ने पाओगे,
या यह चीज़ तुम्हें कुछ अधिक मात्रा में खानी ही होगी ।

नीलाम्बर ने तस्तरी खींच ली । उसने कहा—तेरा यह जो
खिलाने का अत्याचार है, उसके कारण तो मुझे इतनी घबराहट
मालूम होती है कि मैं जाकर वन में वास करूँ ।

पुटी बोल उठी—भैया, मुझे भी—

पुटा को डौंटते हुए विराज ने कहा—चुप मुँह जलो, खायगी
नहीं, तो जीवेगी कैसे ? यह जो तू बात-बात के लिए नालिश
करती रहती है, इसका मज़ा चखना पड़ेगा समुराल जाने पर ।

(२)

यह घटना हुए डेढ़ महीने बीत चुके थे । इधर पाँच दिन
से नीलाम्बर की तबीयत बहुत खराब थी । उसे बड़े ज़ोरों का
ज्वर हो आया था । परन्तु आज सवेरे से उसकी तबीयत कुछ
हल्की थी । आज उसे ज्वर नहीं था । विराज ने अपने हाथ से
उसकी कल की पहना हुई धोती खोल कर धुली हुई धोती पहना
दी थी । बाद को ठिकाने से विस्तार लगा कर उसने उसे सुखा
दिया था और वह स्वयं अपना नियमित गृह-कार्य करने के
लिए चली गई थी । बाहर नारियल का एक पेड़ था ।
नीलाम्बर खिड़की की राह से उसी की ओर ताकता हुआ चुपचाप
पड़ा था । छोटी बहन हरिमति पास ही बैठी हुई धीरे-धीरे पंखे
से हवा कर रही थी । ज़रा ही देर के बाद स्नान से निवृत्त होकर

स्वदेशी रेशम की साड़ी पहने हुए विराज आ गई । अपने भीगे हुए बालों को उसने पीठ पर बिखरा दिया था । उसको उस समय की आभा से सारा कमरा मानो चमचमा उठा । पत्नी की ओर ताक कर नीलाम्बर ने कहा—कहो, क्या बात है ?

विराज ने कहा—जाऊँ, बाबा पञ्चानन्द के पूजन की सामग्री मेज दूँ । यह कह कर घुटनों के बल सिरहाने बैठ कर हाथ से स्वामी के मस्तक की गर्माहट की परीक्षा करने के बाद उसने कहा—नहीं, ज्वर नहीं है । पता नहीं, इस वर्ष जगदम्बा की क्या इच्छा है । आजकल घर-घर में ऐसा हाल हो रहा है ! सबेरे सुनने में आया कि हमारे मोती मेहतर के लड़के के सारे शरीर में भगवती की कृपा हो गई । सिर से लेकर पैर तक जितने भी अङ्ग हैं, उनमें कहीं तिल रखने को भी जगह नहीं रह गई है ।

नीलाम्बर ने व्यग्र भाव से पूछा—मोती के किस लड़के को शीतला निकली हुई है ?

“बड़े लड़के को । मा शीतला, गाँव को शीतल करो मा !—हाय, वही लड़का उस बेचारे के घर का खर्च चला रहा है । गत शनिवार को रात्रि के पिछले पहर में निद्रा भंग होने पर जब तुम्हारे शरीर पर एकाएक हाथ पड़ गया, तब ऐसा लगा, मानो सारा शरीर जला जा रहा है । भय के मारे हृदय का रक्त काठ हो गया । उठकर बैठ गई । बड़ी देर तक रोती रही । अन्त में मनौती की—मा शीतला तुम इन्हें अन्धा कर दो । तभी मैं तुम्हारी पूजा करके खाऊँ-पीऊँगी, अन्यथा निराहार रह कर प्राण-त्याग कर दूँगी ।

यह बात मुँह से निकालते-निकालते विराज के दोनों ही नेत्र भीग गये और उनमें से दो बूँद आँसू चू पड़े।

आश्चर्य में आकर नीलाम्बर ने कहा—तो इतने दिनों से उपवास कर रही तो तुम !

पुटी ने कहा—हाँ मैया, भाभी जी कुछ खाती नहीं। इन्होंने सोंभ को केवल मुट्ठी भर चावल चबाया था और एक लोटा जल पी लिया था। तब से ये बैसी ही पड़ी हैं। किसी को कोई बात ही नहीं सुनतीं।

पुटी की यह बात सुनकर नीलाम्बर अत्यन्त ही असन्तुष्ट हुआ। उसने कहा—यह सब क्या तुम्हारा पागलपन नहीं है ?

अञ्जल से आँखें पोंछ लेने के बाद विराज ने कहा—पागलपन नहीं है ! असली पागलपन है। परन्तु यदि तुमने स्त्री होकर जन्म ग्रहण किया होता तो तुम्हें मालूम होता कि स्वामी कैसी वस्तु है ! तब तुम समझ पाते कि आजकल जैसी हवा फैली है, वैसे समय में स्वामी को ज्वर हो जाने पर स्त्री के हृदय में किस प्रकार की व्याकुलता उत्पन्न होती है।

इतना कह कर विराज उठकर चली जा रही थी। एकाएक रुककर वह बोली—पुटी, नौकरानी पूजा की सामग्री लिये जा रही है, तू उसके साथ चली तो जा। भटपट स्नान कर ले।

पुटी बहुत ही प्रसन्न भाव से उठ कर खड़ी हो गई। वह बोली—जाती हूँ भाभी जी !

“तो भटपट तैयार हो जा, देरी न कर। अपने मैया के शीघ्र आरोग्य होने के लिए बाबा पञ्चानन्द से अच्छी तरह वरदान माँग लेना।”

पुटी दौड़ती हुई स्नान करने चली गई। नीलाम्बर ने कहा—यह कार्य तो वह अत्यन्त ही उत्तमतापूर्वक कर लेगी। इस तरह उत्तमतापूर्वक कर लेगी कि उस तरह कदाचित् तुम भी न कर सको।

विराज ने मुस्कराते हुए मस्तक हिलाया। वह बोली ऐसा ख्याल मत करो। चाहे भाई हों, या माता-पिता हों, स्त्री जाति के लिए स्वामी से बढ़ कर ये कोई नहीं होते। भाई या माता-पिता के चले जाने पर, उनका वियोग होने पर, दुःख क्लेश बहुत अधिक होता है, इसमें सन्देह नहा है। किन्तु स्वामी के चले जाने पर तो सर्वस्व ही जाता रहता है। मुझे ही देखो। मैं पाँच-पाँच दिन से बिना कुछ खाये पड़ी हूँ ! किन्तु मेरे हृदय में जो दुर्भावना है, उसी के नाचे सारी भूख-प्यास दबी हुई है। मुझे ऐसा मालूम हो नहीं पड़ता कि मैंने उम्वास किया है। किन्तु कौन है तुम्हारी ऐसी बहन ? ज़रा बुलाओ तो ! देखती हूँ कि कैसे वह....

नीलाम्बर उसकी बात काट कर उतावली के साथ बोला—फिर !

विराज ने कहा—तो कहते क्यों हो ? मैंने पागलपन किया है या और कुछ किया है, यह बात या तो मैं जानती हूँ या तो जानते हैं वे देवता, जिन्होंने संसार में मुझे मुँह दिखाने लायकर रक्खा है ? मैं तो उस अवस्था में एक दिन भी जावित न रहती। माँग का सिन्दूर पोंछ डालने से पहले मैं माँग को ही पत्थर से खरोच-खरोच कर माथे से अलग कर डालती। किसी शुभ कर्म के लिए यात्रा करते समय कोई आदमी मुँह न देखे,

किसी शुभ कर्म के अवसर पर कोई आदमी ज़रा-सा बुलावे न, इस तरह का जीना भी कोई जीना है। भगवान् न करे कि विधवा का वेश धारण करके किसी को लोगों के सामने निकलना पड़े। पहले जो विधवा को जलाकर लोग मार डालते थे, वही अच्छा था। उस समय के पुरुष स्त्री जाति के दुःख क्लेश को समझते थे। आज-कल के पुरुषों में वह बात नहीं है।

नीलाम्बर ने कहा—नहीं, नहीं, तू ही अब देश भर के समस्त पुरुषों को समझा दे।

विराज ने कहा—हाँ, मैं समझा सकती हूँ। केवल मैं ही क्यों, तुम्हें पा जाने के बाद जिस किसी को तुम्हें खोना पड़ेगा, उसी में यह शक्ति आ जायगी कि वह अधिकारपूर्वक इस बात को समझा सके। जाने भी दो, मैं यह सब क्या बक रही हूँ ?

इतनी बातें मुँह से निकाल जाने के बाद ही विराज हँस पड़ी। बाद को झुक कर उसने फिर एक बार स्वामी के शरीर के ताप की परीक्षा की। उसने स्वामी के माथे पर हाथ रक्खा, सीने पर हाथ रक्खा और इस बात का भली भाँति पता लगा लेने के बाद कि इनके शरीर में अब ज्वर नहीं है, उसने पूछा—शरीर में कहीं पीड़ा तो नहीं हो रही है ?

मस्तक हिला कर नीलाम्बर ने कहा—नहीं।

विराज ने कहा—तो फिर चिन्ता करने की कोई बात नहीं है। आज मुझे भूख लगी है,—जाऊँ, कुछ खाने को बनाने का आयोजन करूँ। मैं तुमसे सच कहती हूँ, आज यदि कोई मेरा एक हाथ काट ले, तो भी कदाचित् मुझे क्रोध न आवेगा।

यदु नामक नौकर ने बाहर से पुकारा—बहु जी, क्या वैद्य जी के यहाँ जाकर उन्हें बुला ले आना होगा ?

नीलाम्बर ने कहा—नहीं, नहीं, अब वैद्य जी को बुलाना आवश्यक नहीं है ।

नीलाम्बर ने इस कथन से यदु को सन्तोष नहीं हुआ । वह गृहिणी की अनुमति के लिए खड़ा रहा । यह देख कर विराज ने कहा—नहीं, जाकर आज उन्हें फिर बुला ले आओ; वे आकर एक बार अच्छी तरह देख जायँ ।

तीन दिन के बाद नीलाम्बर को तबीअत बिल्कुल अच्छी हो गई । वह बाहर देवी जी के मन्दिर में बैठा था । उसे इस प्रकार बैठा देख कर मोती मेहतर उसके पास पहुँचा । पहुँचते ही वह रो पड़ा और बोला—मैया जी, तुम यदि एक बार न देख लोगे तो मेरा छिम्नत बच न सकेगा । एक बार चरणों की धूलि देने की कृपा करो देवता ! तब सम्भव है कि इस बार उसके प्राणों की रक्षा हो जाय ।

मोती और भी कोई बात कहने जा रहा था, किन्तु इससे अधिक कुछ कहने के लिए उसका मुँह खुल न सका । आँसुओं के आवेग से उसका कण्ठ-स्वर रुक हो उठा ।

नीलाम्बर ने पूछा—क्यों मोती, लड़के के शरीर में देवी जी क्या बहुत अधिकता से निकल आई हैं ?

आँखें पोंछते-पोंछते मोती ने कहा—यह न पूछो मैया जी ! भगवती ने एक तिल भर भी स्थान खाली नहीं रक्खा । नीच जाति के घर में जन्म लिया है कुछ तो जानता नहीं हूँ कि ऐसी अवस्था में क्या करना चाहिए । एक बार कृपा करो

महाराज !—यह कह कर मोती ने नीलाम्बर के दोनों ही पैर जोर से पकड़ लिये ।

नीलाम्बर ने धीरे-धीरे अपने पैर छुड़ा कर कोमल स्वर में कहा—मोती, घबराने की कोई बात नहीं है । तू जा, मैं बाद को आऊँगा । मोती को बहुत ही कष्ट भाव से रोते देख कर नीलाम्बर से अपनी बीमारी की बात न कही जा सकी ।

लड़के को एक बार देख लेने के लिए मोती ने नीलाम्बर से जो इतना अधिक आग्रह किया था, उसका एक विशेष कारण था । नीलाम्बर ने सभी प्रकार के रोगों के रोगियों की सेवा करते-करते इस सम्बन्ध में अच्छा अनुभव और जानकारी प्राप्त कर ली थी । इसलिए आस-पास के गाँवों में जब कभी किसी को कोई कठिन रोग होता तब उसके घर के लोग कम से कम एक बार नीलाम्बर को दिखलाये बिना न रहते । जब तक नीलाम्बर एक बार आश्वामन न देता, तब तक स्वयं रोगी को तथा उसके घर के लोगों को शान्ति का अनुभव न हो पाता । यह बात स्वयं नीलाम्बर को भी मालूम थी । उसे मालूम था कि इस जवार के जितने भी अशिक्षित मनुष्य हैं, उन्हें वैद्यों और डाक्टरों की औषधियों में इतना विश्वास नहीं है, जितना कि मेरी पद-धूलि में है, मेरे हाथ से छिड़के गये जल के छीटे में है । अपने प्रति लोगों को जो इस प्रकार की आन्तरिक भद्रा थी, उसे भली भाँति अनुभव करने के कारण नीलाम्बर किसी दिन किसी को निराश नहीं कर पाता था । उसे जो बुलाता, उसी के यहाँ वह प्रसन्नतापूर्वक दौड़ा जाता ।

जाते समय मोती एक बार फिर रोया । उसने एक बार फिर

पद-धूलि देने के लिए नीलाम्बर से प्रार्थना की, बाद को वह आँखें पोंछते-पोंछते वहाँ से चलता बना। उसके जाने पर नीलाम्बर उद्विग्न होकर सोचने लगा। मन ही मन उसने कहा—मेरे शरीर में तो अब भी कुछ-कुछ निर्बलता बना हुई है, परन्तु कोई बात नहीं, मैं मोती के यहाँ अवश्य जाऊँगा। नीलाम्बर को यदि कोई चिन्ता थी तो केवल यह कि वह घर से निकले कैसे। विराज से वह बहुत डरता था। उसके सामने यह कहने का साहस उसे नहीं हो रहा था कि मुझे मोती के यहाँ जाना है।

नीलाम्बर जिस समय इस उधेड़-बुन में पड़ा था, ठीक उसी समय आँगन से हरिमति का कण्ठ-स्वर उसके कानों में पड़ा। पुकार कर उसने कहा—भैया जी, भाभी जी कह रही हैं कि आकर भीतर लेट जाओ।

नीलाम्बर ने कोई उत्तर नहीं दिया। मिनट भर के बाद हरिमति स्वयं आकर पहुँच गई। वह बोली—क्यों भैया जी, क्या तुमने सुना नहीं ?

नीलाम्बर ने मस्तक हिलाकर कहा—नहीं।

हरिमति ने कहा—जिस समय तुमने ज़रा-सा भोजन किया है, उसी समय से बैठे हो। भाभी जी कह रही हैं कि अब बैठे न रहो, आकर भीतर लेट जाओ।

नीलाम्बर ने धीरे-धीरे पूछा—वह क्या कर रही है री पुटी !

हरिमति ने कहा—अब वे भोजन करने के लिए बैठी हैं।

बहन को प्यार करते हुए नीलाम्बर ने कहा—तू बड़ी सीधी लड़की है पुटी, साक्षात् लक्ष्मी का अवतार है। मेरा कहना तो तू खूब मानती है। क्या तू मेरा एक काम कर देगी ?

पुटी ने मस्तक हिला कर कहा—हाँ, कर दूँगी ।

नीलाम्बर ने अब अपना कण्ठ-स्वर और भी कोमल कर लिया । वह बोला—बहन ! चुपके से मेरा डुपट्टा और छाता तो उठा ले आ ।

“डुपट्टा और छाता ?”

नीलाम्बर ने कहा—हाँ ।

भौहें माथे पर चढ़ा कर हरिमति ने कहा—बाप रे, भाभी जी इसी ओर मुँह किये हुए भोजन कर रही हैं !

अन्तिम प्रयत्न करते हुए नीलाम्बर ने कहा—तो क्या तू ले आ सकेगी ?

हरिमति ने होंठ फैलाकर दो बार मस्तक हिलाया और कहा—नहीं भैया जी, भाभी जी देख लेंगी । तुम चल कर लेटो ।

उस समय लगभग दो बजे थे । बाहर सूर्य की किरणें प्रचण्ड रूप धारण किये हुए अग्नि की वर्षा कर रही थीं । उनकी ओर ताकने पर नीलाम्बर मस्तक पर कोई चीज़ डाले बिना बाहर निकलने की कल्पना तक नहीं कर सका । इससे हताश होकर बहन का हाथ पकड़े हुए भीतर जाकर वह लेट रहा । हरिमात ज़रा देर तक तो ऊट-पटाँग की बातें बकती रही, बाद को वह सो गई । इधर नीलाम्बर लेटे-लेटे गम्भीर भाव से इस बात का विचार करने लगा कि मोती के लड़के की बीमारी की चर्चा कैसे दंग से विराज के सामने छेड़ूँ कि उसके हृदय में करुणा का उद्रेक हो आवे ।

दिन प्रायः ढल चला था । विराज सीमेंट से बनी हुई कमरे की चिकनी फ़र्श पर सीने के नीचे एक तकिया रखे हुए

पेट के बल लेटे-लेटे मामा-मामी को पत्र लिख रही थी। उस समय वह लिखने में इतना अधिक तन्मय थी कि उसे और किसी बात का ज्ञान नहीं था। पत्र वह बड़ा लम्बा लिख रही थी। पूरे चार पृष्ठ लिख गई थी; किन्तु अभी तक उसका वह पत्र समाप्त नहीं हुआ था। गाँव में भगवती शीतला का किस प्रकार का भयङ्कर प्रकोप है, किस प्रकार उन्होंने गाँव भर में एकमात्र इसी घर को अछूता रक्खा है और किस प्रकार उसकी माँग के सिन्दूर तथा हाथों की चूड़ियों की रक्षा हो गई है, विराज ये सभी बातें विस्तारपूर्वक लिख रही थी। उसकी यह गाथा इस क्रूर बढ़ती जा रही थी कि पत्र को समाप्त करने में उसे कुछ कठिनाई-सी मालूम पड़ने लगी। इतने में एकाएक चारपाई पर से पुकार कर नीलाम्बर ने कहा—क्यों विराज, क्या तुम मेरी एक बात मानोगी ?

विराज ने जिस तरह दावात में कलम डुबोई थी, उसे उसने उसी तरह छोड़ दिया। मुख ऊपर करके वह बोली—कौन-सी बात है ?

“यदि मानो, तो कहूँ।”

विराज ने कहा—मानने के लायक यदि होगी, तो मानूँगी ही। बताओ, कौन सी बात है ?

मुहूर्त्त भर तक सोचते रहने के बाद नीलाम्बर ने कहा—वतलाने से कोई लाभ न होगा विराज, तुम मेरी बात मान न सकोगी।

विराज ने और कुछ नहीं पूछा। उसने कलम उठा ली और पत्र को समाप्त कर डालने के विचार से वह फिर एक बार झुक पड़ी। परन्तु पत्र लिखने में उसका मन न लग सका। भीतर ही

भीतर उसका कौतूहल बहुत प्रबल हो उठा । वह उठकर बैठ गई और बोली—अच्छा बताओ, मैं तुम्हारी बात मानूँगी ।

नीलाम्बर ज़रा-सा हँसा, उसने ज़रा-सा इधर-उधर किया, बाद को वह बोला—दोपहर को मोती मेहतर आया था । उसने मेरे दोनों ही पैर पकड़ लिये, उन्हें वह किसी प्रकार छोड़ना ही नहीं चाहता था । स्वयं उसका तथा उसके घर के लोगों का विश्वास है कि एक बार मेरी पद-भूलि पड़े बिना उसके लड़के की प्राण-रक्षा न हो सकेगी । इसलिए ज़रा देर के लिए मुझे उसके यहाँ जाना पड़ेगा ।

विराज स्वामी के मुँह की ओर ताकती हुई निस्तब्ध भाव से बैठी रही । ज़रा देर के बाद वह बोली—यह निर्बल शरीर लेकर जाओगे तुम ?

“क्या करूँ विराज ! उससे वादा कर चुका हूँ । मुझे उसके यहाँ ज़रा देर के लिए जाना ही पड़ेगा ।

“वादा क्यों कर लिया ?”

नीलाम्बर चुपचाप बैठा रहा । विराज ने कठोर भाव से कहा—क्या तुम्हारी यह धारणा है कि तुम्हारे ये प्राण केवल तुम्हारे अकेले के ही हैं ! उसके सम्बन्ध में और किसी को कुछ कहने-सुनने का क्या कोई अधिकार ही नहीं है ! तुम्हारे मन में जो कुछ आवे, तुम वही कर सकते हो !

इस बात को टाल देने के विचार से नीलाम्बर ने हँसने का प्रयत्न किया । किन्तु स्त्री के मुँह की ओर ताकने पर उसे हँसी आ ही नहीं सकी । वह किसी प्रकार मुँह से केवल इतनी बात निकाल पाया—किन्तु उसका रोना देख कर—

विराज बीच में ही बात काट कर बोल उठी—ठीक तो है ! उसका रोना तुमने देखा ! किन्तु संसार में क्या मेरा रोना देखने वाला भी कोई है ! यह कह कर चार पृष्ठ का लम्बा जो पत्र लिख रक्खा था, उसे उसने उठा लिया और फाड़-फाड़कर उसके टुकड़े-टुकड़े करती हुई वह बोली—ओह, पुरुषों की भी कैसी मनोवृत्ति होती है ! चार-चार दिन, चार-चार रातें, मैंने बिना कुछ खाये और बिना सोये काट दीं । उमी का आज हाथों हाथ फल देमे चले हैं । घर-घर में ज्वर है, घर-घर में शीतला है । ये चले हैं इतना निर्बल शरीर लेकर रोगी देखने के लिए ! अच्छा जाओ, मेरे लिए भी भगवान् हैं ।

इतना कह कर विराज सीने के नीचे तकिया रख कर फिर एक बार पेट के बल लेट गई ।

नीलाम्बर के होठों पर बहुत ही सूक्ष्म, बहुत ही क्षीण, हँसी की रेखा उदित हो आई । धीरे-धीरे वह बोला—“क्यों विराज, क्या यह भरोसा तुम लोगों को भी है जो तू बात-बात में भगवान् की दोहाई देती रहती है !”

विराज झट से उठ कर बैठ गई । वह रोष-मय स्वर में बोली—“नहीं, भगवान् का भरोसा एक-मात्र तुम्हीं लोगों को है, हम लोगों को नहीं है । हम भजन नहीं गातीं, तुलसी की माला नहीं पहनतीं, मुर्दे नहीं जलाती फिरतीं, इसलिए हमें भगवान् का भरोसा नहीं है । भगवान् का भरोसा केवल तुम लोगों को है ।”

पत्नी को इस प्रकार अप्रसन्न होते देखकर नीलाम्बर हँस पड़ा । वह बोला—“तू रुष्ट न हो विराज, बात सचमुच ऐसी ही है । केवल तेरे अकेले के सम्बन्ध में ऐसी बात नहीं है । यह

बात तो तुम सभी लोगों के—स्त्री-मात्र के सम्बन्ध में कही जा रही है। भगवान् के ऊपर भरोसा करके पड़े रहने के लिए जितना बल आवश्यक है, उतना बल स्त्रियों के शरीर में नहीं होता। ऐसी अवस्था में इसमें तेरा क्या दोष है ?”

नीलाम्बर की इन बातों से विराज का क्रोध और भी बढ़ गया। वैसे ही तैश के साथ वह बोली—“नहीं, दोष क्यों है, वह तो स्त्री-जात का गुण है। किन्तु ईश्वर पर भरोसा करने के लिए यदि शारीरिक बल की ही आवश्यकता है, तो बाघों और भालुओं के शरीर में तो और भी अधिक बल होता है। इसके सिवा बल हो तो भी अच्छा, न हो तो भी अच्छा, यह निर्बल शरीर लेकर तुम्हें मैं कहीं जाने न दूँगी, तुम चाहे कितनी ही दलीलें क्यों न दो, अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए कितनी ही युक्तियाँ क्यों न उपस्थित करो।”

नीलाम्बर और कुछ नहीं बोला। वह चुपचाप लेटा रहा। विराज भी कुछ क्षण तक मौन भाव से बैठी रहने के बाद यह कह कर कि अब सोंफ़ हो चली है, चलूँ कुछ काम काज करूँ, उठ गई। घंटा भर के बाद दोपक जला कर जब वह उस कमरे में रखने आई, तब उसने देखा कि स्वामी शय्या पर नहीं है। तेज़ी से पैर बढ़ाते हुई वह बाहर आई और पुकार कर बोली—
पुटी, तेरे भैया जो कहाँ गये री ! जा, बाहर से देख तो आ।

पुटी दौड़ती हुई चली गई। पाँच मिनट के बाद हाँफते-हाँफते लौट कर वह बोली—कहीं नहीं हैं। नदी के किनारे भी मैं देख आई।

मस्तक ढिलाकर विराज ने कहा—हूँ । बाद को रसोईघर के द्वार पर जाकर वह शान्त भाव से बैठ गई ।

(३)

तीन वर्ष बाद की बात है । दो मास पहले हरिमति ससुराल जा चुकी थी । छोटा भाई पृथक् हो गया था और उसने घर में बटवारा करके अपने लिए दूसरा दरवाज़ा खोल लिया था । बाहर देवी जी के मन्दिर के बरामदे में संध्या की छाया भली भाँति स्पष्ट हो उठी थी । वहीं नीलाम्बर एक फटी-सी चटाई पर बैठा हुआ था । विराज चुपके-से आकर उसके पास खड़ी हुई । नीलाम्बर ने दृष्टि उठा कर उसकी ओर ताकने के बाद कहा—एकाएक बाहर निकल आई हो ?

विराज एक बग़ल बैठ गई । वह बोली—मैं एक बात पूछने आई हूँ ।

“कौन सी बात ।”

विराज ने कहा—कौन-सी वस्तु खाने से मनुष्य की मृत्यु हो सकती है, यह बात क्या तुम बता दोगे ?

नीलाम्बर चुप रहा ।

विराज ने फिर कहा—या तो तुम मुझे कोई ऐसा उपाय बता दो, जिससे मेरी मृत्यु हो जाय या मुझसे साफ़-साफ़ यह बतलाओ कि तुम रोज़-रोज़ इस तरह सूखते क्यों जा रहे हो ?

“मैं सूखता जा रहा हूँ, यह बात तुमसे किसने बतलाई ?”

विराज दृष्टि उठा कर मुहूर्त भर स्वामी की ओर ताकती रही । बाद को वह बोली—तुमने भी ख़ूब कहा । जब कोई बतला देगा तब मैं जान पाऊँगी, क्या तुम सचमुच ऐसा ही समझते हो ।

नीलाम्बर ज़रा-सा हँसा । अपनी बात को सँभालते हुए वह बोला—अजी नहीं, मेरे कहने का मतलब यह नहीं है । परन्तु तू बहुत आर को और समझ बैठा करती है न, इसीलिए मैं पूछ रहा हूँ कि यह बात तुझसे किसी ने बतलाई है या तूने स्वयं ही ऐसा समझा है ?

विराज को इस प्रश्न का उत्तर देने की आवश्यकता नहीं प्रतीत हुई । वह बोली—मैंने तुमसे कितना कहा कि पुटी का विवाह ऐसी जगह करने की आवश्यकता हमें नहीं है, परन्तु तुमने किसी तरह भी मेरी बात न मानी । पास में जो कुछ नक़द था वह गया, मेरे शरीर पर के गहने चले गये, यदु मेहतर के कारण कल्लार की ज़मीन रेहन हो गई, तिस पर दो वर्ष से अकाल पड़ा है । ज़रा मुझसे बताओ तो कि किस तरह तुम पुटी के दूल्हे की पढ़ाई के खर्च का प्रबन्ध महीने-महीने में कर सकोगे ! ज़रा-सा कुछ गड़बड़ हुआ नहीं कि पुटी को ताने सुनने पड़ेंगे । उस लकड़ी का स्वभाव ऐसा है कि ज़रा-सी बात ही के कारण उसका मन बहुत दुःखी हो जाता है । बातें बरदाश्त कर लेने की शक्ति उसमें ज़रा भी नहीं है । यदि कोई तुम्हारी ज़रा भी निन्दा करेगा तो वह किसी प्रकार भी सहन न कर सकेगी । ऐसी अवस्था में पता नहीं, क्या से क्या हो जाय । भगवान् ही कुशल करें । परन्तु तुमने ऐसा काम क्यों किया ?

नीलाम्बर कुछ नहीं बोला ।

विराज ने कहा—“इसके सिवा पुटी की भलाई के ख्याल से तुमने ऐसा भ्रष्ट मोल ले लिया कि उसके कारण तुम रात-दिन चिन्ता में ही पड़े रहते हो । इस तरह तो तुम मेरा सर्वनाश

ही कर डालोगे । नहा, यह नहीं होगा । इस तरह बराबर चिन्ता में पड़े रहने की अपेक्षा तो यह अधिक अच्छा होगा कि तुम चार-पाँच बीघे ज़मीन बेच डालो और पाँच सौ रुपये तैयार करके पुटी के ससुर के पास चले जाओ । वे रुपये उनके हवाले करके उनसे दण्डवत् कर लो और कहो कि महाराज ये ही रुपये लेकर मुझे छुटकारा दे दीजिए । मैं गरीब आदमी हूँ, मुझमें अब और कुछ देने की शक्ति नहीं है । इस प्रकार तुम अपना पिंड छुड़ा लो, आगे पुटी के भाग्य में जो कुछ होगा, होता रहेगा ।”

नीलाम्बर ने विराज की इन बातों का भा कोई उत्तर नहीं दिया । विराज नीलाम्बर के मुँह की आर ताकता रहा । ज़रा देर के बाद उसने कहा—तुम ऐसा कह सकोगे कि नहीं ?

एक आह भर कर नीलाम्बर ने कहा—कह क्यों न सकूँगा ? परन्तु यदि सभी कुछ बेच डालेंगे तो आगे चल कर हम लोगों का निर्वाह किस वस्तु के आधार पर होगा ?

विराज ने कहा—निर्वाह तो किसी प्रकार हो ही जायगा ? जायदाद के ऊपर रुपये लेने में दोहरी हानि है । एक तो रुपयों का व्याज बढ़ता रहता है, दूसरे महाजन की घुड़कियाँ सहनी पड़ती हैं । इसलिए किसी के यहाँ जायदाद रेहन रख देने की अपेक्षा उसे बेच कर सदा के लिए भ्रमट तोड़ देना अधिक अच्छा है । हम लोगों के कोई लड़का-नड़का तो है नहीं, जिसके लिए हमें चिन्ता करनी होगी । हम दो ही प्राणों तो हैं । किसी न किसी प्रकार सूखा-रूखा खाकर दिन काट ही देंगे । यदि उदर-पूर्ति का कोई सहारा न रहेगा तो तुम तो साधू बाबा बने

ही हो, मैं भी सधुआइन बन जाऊँगी और दोनों ही प्राणी कभी काशी में, कभी वृन्दावन में और कभी किसी दूसरे तीर्थ-स्थान में घूमेंगे ।

नीलाम्बर ने मुस्कराते हुए कहा—तू क्या करेगी, मँजीरा बजावेगी ?

“हाँ, बजाऊँगी । यदि मँजीरा बजाते न बनेगा तो कम से कम तुम्हारी भोली तो कन्धे पर लादे-लादे फिरूँगी ही । जिस समय तुम भावों के आवेग में आकर भजन गाने लगते हो, उस समय पशु-पक्षी तक मुग्ध होकर खड़े हो जाते हैं । तो क्या हम दो प्राणियों का पेट न भर सकेगा ? चलो, घर चलो, अँधेरे में तुम्हारा मुख नहीं दिखाई पड़ा रहा है ।”

घर में आकर विराज ने दीपक उठाया और उसे स्वामी के मुख के समीप ले जाकर वह क्षण भर तक चुपचाप ताकती रही । बाद को अपनी हँसी छिपाकर उसने कहा—नहीं, साहस नहीं होता । इस तरह के साधू को और पाँच सधुआइनों के सामने तो जीते जी मैं नहीं निकलने दूँगी । उसकी अपेक्षा तो यह कहीं अधिक अच्छा होगा कि मैं यहीं पर सुख-सुख कर मर जाऊँ ।

नीलाम्बर हँस पड़ा । वह बोला—अजी, वहाँ पर केवल सधुआइनें ही नहीं होतीं, साधू भी होते हैं ।

विराज ने कहा—होते होंगे साधू । एक दो नहीं, हजारों हों, लाखों हों । मुझसे मतलब ?

इतना कह कर विराज ने जहाँ से दीपक उठाया था उसे वह वहीं रख आई । बाद को स्वामी के चरणों के समीप बैठ

कर गंभीर भाव से वह बोली—अच्छा बताओ तो कि सती और असती में क्या अन्तर होता है ? इसी संसार में सती स्त्रियाँ भी रहती हैं और इसी में कुलटायें भी रहती हैं । परन्तु मैंने कभी कोई असती स्त्री—कोई कुलटा, नहीं देखी । किसी कुलटा को एक बार देखने की मेरी बड़ी इच्छा है । मैं जानना चाहती हूँ कि कुलटायें कैसी होती हैं । वे ठीक हमी लोगों के समान होती हैं, या उनमें हमारी अपेक्षा कोई भिन्नता होती है । वे लोग क्या करती हैं, क्या सोचती हैं, क्या खाती हैं, किस तरह सोती हैं, यह सब देखने की मेरी बड़ी इच्छा है । अच्छा, क्या तुमने कभी कोई असती स्त्री देखी है ?

नीलाम्बर ने कहा—हाँ, देखी है ।

“देखी है ? अच्छा, जिस तरह मैं बैठे-बैठे तुमसे बातें कर रही हूँ, क्या उसी तरह वे भी बैठ कर इच्छानुसार किसी भी आदमी के साथ बातें किया करती हैं ?”

नीलाम्बर ने हँस कर कहा—मैं यह नहीं बतला सकता । इतने करीब से मैंने उन्हें नहीं देखा है ।

विराज क्षण भर तक अनिमेष दृष्टि से स्वामी के मुँह की ओर ताकती रही । बाद को एकाएक न जाने ऐसी कौन-सी बात उसके मन में आई कि उसका सारा शरीर बारंबार कंपित-सा होने लगा । उसे ऐसा मालूम पड़ने लगा कि मानो मेरे अङ्ग-अङ्ग में काँटे चुभ रहे हैं ।

पत्नी की इस प्रकार की अवस्था देख कर नीलाम्बर ने कहा—तुम्हें यह क्या हो गया है री ?

विराज ने कहा—ओह, कैसी होती हैं वे ? राम ! राम ! सौंभ के समय यह कैसी बात छिड़ गई ? क्यों, सन्ध्या नहीं की तुमने ?

नीलाम्बर ने कहा—नहीं, अब करने जा रहा हूँ ।

“हाँ, जाओ, हाथ-पैर धो जाओ । मैं तब तक इसी कमरे में आसन बिछा कर तुम्हारे मन्ध्योपासन करने की व्यवस्था किये देती हूँ ।”

इससे पाँच-छः दिन बाद की बात है । रात्रि में प्रायः दस बजे थे । नीलाम्बर बिस्तरे पर लेटे-लेटे आँखें मूँदे हुए फर्सी का नर्चा मुख में डाल कर तम्बाकू पी रहा था । विराज घर के सभी काम-काज समाप्त कर चुकी थी । वह लेटने जा रही थी । उसके मन में आया कि लेटने से पहले एक बीड़ा पान खा लूँ । इससे भूमि पर ही बैठ कर वह अपने लिये पान लगाने लगी । इतने में एकाएक उसके मुँह से निकला—क्यों जी, क्या शास्त्रों की सभी बातें सच होती हैं ?

नीलाम्बर ने नर्चा एक बगल रख दिया । स्त्री की ओर मुँह फेर कर वह बोला—शास्त्रों की बातें सच नहीं तो क्या मिथ्या होती हैं ?

विराज ने कहा—नहीं, मैं यह नहीं कह रही हूँ कि मिथ्या होती हैं । परन्तु क्या प्राचीन काल के समान ही आजकल भी वे फलदायक होती हैं ?

मुहूर्त भर सोचते रहने के बाद नीलाम्बर ने कहा—मैं पण्डित नहीं हूँ विराज, सब बातें मुझे मालूम नहीं हैं । परन्तु मैं जहाँ तक समझता हूँ, जो बात सच है, वह प्राचीन काल में भी

सच थी, वर्तमान काल में भी, इस घोर कलिकाल में भी, सच है ।

विराज ने कहा—सावित्री-सत्यवान् की ही बात को ले लो । सावित्री मृतक स्वामी को यमराज के हाथ से लौटाल ले आई थी । क्या इस युग में भी किसी स्त्री के लिए ऐसा करना सम्भव है ?

नीलाम्बर ने कहा—क्यों नहीं सम्भव है ? जो स्त्री सावित्री के समान सती है, वह अवश्य ही ऐसा कर सकती है ।

“तब तो मैं भी ऐसा कर सकती हूँ ?”

नीलाम्बर हँस पड़ा । वह बोला—तो क्या तू सावित्री के समान सती है ? सावित्री देवता था ।

पानदान को खिसका कर एक बगल रखती हुई विराज बोली—होगी वं देवता । सतीत्व में मैं ही उनकी अपेक्षा कहाँ कम हूँ ? मेरे ही समान सतीत्व की मर्यादा का पालन करनेवाली और स्त्रियाँ संसार में हो सकती हैं, किन्तु सतीत्व की महिमा को मुझसे भी अधिक ममझनेवाली कोई स्त्री है, यह बात मानने के लिए मैं तैयार नहीं हूँ । इस विषय में किसी से मैं एक तिल भी कम नहीं हूँ, चाहे सावित्री हों या और ही कोई हों ।

नीलाम्बर ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया । वह मौन भाव से पत्नी के मुँह की ओर ताकता रह गया । विराज जब पान लगाने के लिए बैठी थी तब उसने दीपक लाकर अपने पास रख लिया था । उसका समस्त प्रकाश विराज के मुख पर पड़ रहा था । उस प्रकाश में नीलाम्बर ने यह बात स्पष्ट रूप से

देख पाई कि विराज के दोनों ही नेत्रों से निकल-निकल कर एक अद्भुत प्रकार की ज्योति विकीर्ण हो रही है ।

नीलाम्बर ने बहुत-कुछ डरते ही डरते यह बात कह डाली — तो शायद तुम भी ऐसा करने में समर्थ हो जाओगी ।

विराज उठ आई । झुक कर उसने स्वामी के दोनों ही चरणों से अपना मस्तक लगाया और उनके चरणों के समीप वह बैठ गई । बाद को वह बोली—तुम मुझे यही आशीर्वाद दो कि जब से मुझे ज्ञान हुआ है, तब से लेकर आज तक यदि मैंने इन दोनों चरणों के सिवा संसार में और किसी को न जाना हो, यदि मैं यथार्थ में पतिव्रता होऊँ, तो असमय में मैं तुम्हें सावित्री के समान ही लौटाल ले आने में समर्थ होऊँ । इसके सिवा अन्तकाल आने पर मैं इन चरणों पर मस्तक रखे ही रखे प्राणों का परित्याग करूँ, जिससे कि मस्तक में यह सिन्दूर और हाथों में चूड़ियाँ धारण किये हुए चिता पर लेट पाऊँ ।

नीलाम्बर व्यस्त भाव से उठकर बैठ गया । वह बोला—क्यों री विराज, तुम्हें क्या हो गया है आज ? विराज के दोनों ही नेत्र सजल हो उठे थे । तौ भी उसके होठों पर एक अत्यन्त ही मृदु, अत्यन्त ही मधुर हँसी की रेखा उदित हो आई । वह बोली—कभी फिर बतलाऊँगी, आज नहीं । आज तो तुम मुझे आशीर्वाद दो कि मृत्यु-काल में मैं तुम्हारे इन दोनों चरणों की धूलि प्राप्त करने में समर्थ हो जाऊँ, तुम्हारी गोद में मस्तक रखे हुए, तुम्हारे मुँह की ओर ताकते-ताकते प्राण-त्याग कर सकूँ ।

विराज और कुछ न कह सकी । इतना कहते-कहते उसका कण्ठ-स्वर रुद्ध हो उठा ।

पत्नी की यह अवस्था देखकर नीलाम्बर घबरा उठा। उसे खींच कर वह अपनी गोद में ले आया और बोला—क्या हो गया है री आज ! क्या किसी ने तुझे कुछ कहा है ! स्वामी की गोद में मुँह छिपा कर विराज चुपचाप रोने लगी। उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

नीलाम्बर ने फिर कहा—तू और तो कभी नहीं ऐसा करती थी विराज ! तुझे क्या हुआ है, बतलाती क्यों नहीं ?

स्वामी की गोद में मुँह छिपाये ही छिपाये विराज ने आँखें पोंछ लीं, परन्तु उसने मुख नहीं उठाया। मृदु स्वर में वह बोली—किसी और दिन बतलाऊँगी।

नीलाम्बर ने फिर आग्रह नहीं किया। वह जिस तरह बैठा था, उसी तरह बैठा रहा और विराज के बालों के बीच में उँगलियाँ फेरते-फेरते वह मौन भाव से ही पत्नी को सांत्वना देने लगा। बहन के विवाह में उसने शक्ति से अधिक व्यय कर डाला था, इससे वह बहुत ऋणी हो गया था। आजकल गृहस्थी का खर्च पहले की तरह आसानी से नहीं चलता था। इधर लगातार द्वां वर्ष से खेती भी खराब होती जा रही थी, कुछ अन्न ही नहीं पैदा होता था। पर्याप्त वर्षा न होने के कारण प्रायः अधिकांश फसल सूख गई थी। इसलिए गाड़ में धान नहीं रह गया था, तालाब में पानी नहीं था, मछलियाँ नहीं थीं, केले का बाग सूखता जा रहा था। नीबू के बाग में कच्चे ही नीबू भड़ते जा रहे थे। ऊपर से महाजनों के तकाज़े पर तकाज़े आने लगे थे। पुटी का ससुर अलग परेशान कर रहा था। लड़के की पढ़ाई के खर्च के लिए वह बार-बार, कभी मीठी और कभी कड़ी

चिट्ठी भेजता ही रहता था। इतनी बातें विराज को मालूम नहीं थीं। कितने ही अप्रोत्तिकर संवादों को नालाम्बर ने अधिक से अधिक प्रयत्न करके छिपा रक्खा था। अब वह उद्विग्न होकर सोचने लगा कि सम्भवतः ये सभी बातें किसी ने विराज से बतला दी हैं। विराज ने एकाएक मुख ऊपर किया। वह ज़रा-सा मुस्कराई, वाद को बोली—मैं तुमसे एक बात पूछना चाहती हूँ। क्या तुम उसे सचमच बतलाओगे ?

नीलाम्बर मन ही मन और भी अधिक शङ्कित हो उठा। वह बोला—कौन-सी बात है ?

विराज में जितना भी सौन्दर्य था, उस सबसे अधिक सौन्दर्य था उसके मुख की मुस्कराहट में। वही मुस्कराहट एक बार फिर होंठों पर विकसित करके उसने स्वामी के मुख की ओर ताकते-ताकते कहा—भला मैं काली-कलूटी तो नहीं हूँ ?

नीलाम्बर ने मस्तक हिला कर कहा—नहीं।

“यदि मैं संयोगवश काली-कलूटी हो होता, तो भी क्या तुम मुझे इतना ही प्यार करते ?”

यह अद्भुत प्रश्न सुनकर नीलाम्बर का कुछ विस्मय तो अवश्य हुआ, किन्तु उसके हृदय के ऊपर से एक बहुत भारी बोझ खिसक कर गिर पड़ा। प्रसन्न भाव से हस कर वह बोला—छुटपन से तो मैं एक अनुपम सुन्दरी को ही प्यार करता चला आ रहा हूँ; इस समय मैं यह कैसे कहूँ कि जिस सुन्दरी को मैं प्यार करता हूँ, वह यदि काली-कलूटी होती तो क्या करता ?

दोनों बाहुओं से स्वामी को गर्दन को जकड़ कर और भी

समीप खींच लेने के बाद विराज ने कहा—मैं कैसे कहूँ ? तो भी तुम मुझे इसी तरह प्यार करते ?

इस पर भी नीलाम्बर चुपचाप ही ताकता रहा ।

विराज ने कहा—तुम सोचते होगे कि यह बात मैंने कैसे जानी ? यही न ?

अब नीलाम्बर धीरे-धीरे बोला—हाँ, मैं यही सोच रहा हूँ । किस तरह तुमने यह बात मालूम की ?

विराज ने स्वामी की गर्दन छोड़ दी । उसकी गोद के एक किनारे पर मस्तक रखकर वह लेट गई और उसके मुख की ओर ताकते-ताकते चुपके-चुपके वह बोली—मेरा मन मुझे ऐसा बतला रहा है । मैं तुम्हें जितना पहचानती हूँ, उतना तुम स्वयं भी अपने आपको नहीं पहचानते हो । इसी से मैं जानती हूँ कि मेरे काली-कल्लूटी होने पर भी तुम मुझे ठीक इसी प्रकार प्यार किया करते । तुम ऐसा कोई भी काम नहीं कर सकते हो, जो उचित न हो,—अन्याय हो—जिसे करने से पाप होता हो । स्त्री को प्यार न करना अन्याय है । इसी से मैं जानती हूँ कि यदि मैं अन्धी अथवा लूली-लँगड़ी होती, तो भी मैं तुमसे इसी तरह का आदर प्राप्त करती आती ।

नीलाम्बर ने इस बात का कोई उत्तर नहीं दिया ।

विराज स्वामी की गोद में मुँह छिपाये हुए मुहूर्त भर स्थिर भाव से पड़ी रही । बाद को एकाएक अपना हाथ बढ़ाकर उसने इस तरह अन्दाज़ से रक्खा कि उसकी उँगली नीलाम्बर के नेत्र के कोने पर ही पड़ी । चकित भाव से वह बोली—तुम्हारे नेत्रों में यह जल कैसे आया है ?

नीलाम्बर ने सतर्कतापूर्वक स्त्री का हाथ हटा दिया । रुँधे हुए स्वर में वह बोला—तुमने जाना कैसे ?

विराज ने कहा—तुम यह भूल क्यों जाते हो कि नव वर्ष की अवस्था में मेरा विवाह हुआ है ! तुम्हें पा जाने के बाद मैं तुम्हें पाई हूँ ? अपने शरीर पर हाथ रख कर भी क्या तुम यह नहीं जान पाते हो कि मैं भी इसके साथ में मिली हुई हूँ ?

नीलाम्बर कुछ बोला नहीं । आँखें मूँदे हुए वह बैठा रहा । उसकी दोनों ही आँखों के कोनों से बूँद-बूँद करके आँसू टपकने लगा ।

विराज उठकर बैठ गई । सावधानी के साथ उसने अञ्जल के छोर से स्वामी के नेत्रों का जल पोंछ दिया । गंभीर स्वर में वह बोली—चिन्ता मत करो । मा ने मृत्यु-काल में पुटी को तुम्हें सौंपा था । उसका भार वे तुम्हारे ऊपर छोड़ गई थीं । उसी पुटी की कल्याण-कामना से तुम्हें जो कुछ उचित मालूम पड़ा, वही तुमने किया । इससे प्रसन्न होकर या स्वर्ग से हम लोगों को आशीर्वाद देंगी । तुम इस समय शान्त होओ, ऋण से मुक्त हो जाओ । इसके लिये यदि सर्वस्व जाय, तो जाने दो, तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो ।

आँखें पोंछते-पोंछते नीलाम्बर ने रुद्ध स्वर में कहा—विराज, तू जानती नहीं है कि मैंने क्या किया है ? मैंने तेरा—

विराज ने नीलाम्बर को और कुछ नहीं कहने दिया । स्वामी के मुख पर हाथ रख कर वह बोली—मैं सब जानती हूँ । इसके सिवा चाहे मैं कुछ जानूँ या न जानूँ, किन्तु इतना तो निश्चित रूप से ही जानती हूँ कि मैं रात-दिन चिन्ता में पड़े-पड़े

तुम्हें अपना शरीर न सुखाने दूँगा । नहा, यह नहा होगा । जिसका जो कुछ ऋण हो, वह पाई-पाई चुकता करके निश्चिन्त हो जाओ । उसके बाद मस्तक के ऊपर भगवान् हैं, चरणों के नीचे धर्ती ।

एक लम्बी साँस लेकर नीलाम्बर चुप रह गया ।

(४)

और भी लूः महीने बीत गये । नीलाम्बर के छोटे भाई ने हरिमति के विवाह से पहले ही सम्पत्ति का बटवारा कर लिया था । बटवारा करने का उमका उद्देश्य ही यह था कि बहन के विवाह के भार से वह पूर्ण रूप से मुक्त हो जाय । ऐसी अवस्था में पौतृक सपति का जो भाग नीलाम्बर को मिला था, उसी का कुछ अंश रेहन करके उसने हरिमति के विवाह के लिए रुपये उधार लिये थे । छोटे भाई नीलाम्बर ने एक कौड़ी की भी सहायता नहीं की । विवाह में यह भी शर्त हुई थी कि बहनोई की पढ़ाई का खर्च नीलाम्बर को ही चलाना होगा । इससे हरिमति के मसुर के पास उसे प्रातः मास एक बँधो हुई रकम भेजनी पड़ती थी । साथ ही उसका अम्नी गृहस्थी का भी खर्च था । इधर आमदनी का कोई रास्ता नहा था । इससे समय-समय पर बाध्य होकर नीलाम्बर को अपनी भूमि ही महाजन के यहाँ रेहन रखनी पड़ती थी । इस प्रकार नीलाम्बर के ऊपर ऋण का भार क्रमशः बढ़ता ही जा रहा था, किन्तु ममतावश वह अपनी सम्पत्ति किसी प्रकार भी एकदम से बेच नहीं पाता था ।

आज साँझ के समय की बात थी । भोलानाथ मुकुर्जी नामक

एक महाजन आया था और उसने व्याज के रुपये चुका देने के लिए नीलाम्बर से बड़ी कड़ाई के साथ तकाजा किया था। आड़ में खड़े-खड़े विराज ने महाजन की सारी बातें सुन ली थीं। इससे नीलाम्बर के घर में पैर रखते ही वह रसोई-घर से निकल आई और मौन भाव से सामने खड़ी हो गई। पत्नी को इस प्रकार खड़ी देख कर नीलाम्बर ने समझ लिया कि आज अवश्य कोई न कोई ऐसी बात हो गई है, जिससे इसका चित्त दुःखी है। इधर क्षोभ और अपमान के मारे विराज का अन्तल धू-धू करके जल रहा था। किन्तु अपने उस भाव को उसने प्रकट नहीं होने दिया। उँगली से खाट की ओर इशारा करके विराज प्रशान्त एवं गम्भीर स्वर में बोली—यहाँ बैठो।

पत्नी के सङ्केत के अनुसार नीलाम्बर खाट पर बैठ गया। बाद को तुरन्त ही उसके चरणों के समीप भूमि पर विराज भी बैठ गई। वह बोली—या तो तुम मुझे ऋण से मुक्त कर दो या मैं आज तुम्हारे चरण पकड़ कर शपथ करूँगी।

नीलाम्बर ताड़ गया कि विराज ने सब कुछ सुन लिया है। इससे वह अत्यन्त ही भयभीत हो गया। तुरन्त ही झुक कर उसने पत्नी का मुँह दबा लिया, और ज़ोर से खींच कर उसे खाट पर अपनी बगल में बैठालते-बैठालते स्निग्ध कंठ से कहा—छिः विराज, एक साधारण-सी बात पर इस तरह अधीर न होना चाहिए।

विराज ने मुख के ऊपर से उसका हाथ हटा दिया। बाद को वह बोली—इतने पर भी यदि मनुष्य न अधीर हो तो भला फिर कब अधीर हो, ज़रा बताओ तो।

नीलाम्बर की समझ में एकाएक यह न आ सका, कि इस बात का क्या उत्तर दिया जाय। इससे वह मुँह खोलने का साहस नहीं कर सका।

विराज ने कहा—चुपचाप बैठे क्यों हो ? जवाब दो।

नीलाम्बर ने कहा—जवाब देने के लायक कोई बात नहीं है विराज। किन्तु—

स्वामी की बात काट कर विराज बोल उठी—नहीं, किन्तु-परन्तु से काम न चलेगा। मेरे द्वार पर आकर लोग तुम्हें अपमानित कर जायँ और मैं खड़े-खड़े तुम्हारे लिये कही गई अपमानजनक बातें सहन करती रहूँ, इस तरह के भरोसे को तुम अपने हृदय में स्थान मत देना। या तो तुम इसके लिए कोई उपाय करो, या मैं आत्महत्या कर लूँगी।

नीलाम्बर ने डरते-डरते कहा—एक दिन में ही क्या उपाय कर लूँगा विराज ?

“अच्छी बात है। तो एक दिन में न सही, दो ही दिन में क्या उपाय कर लोगे, यह तो ज़रा मुझे समझा दो ?”

नीलाम्बर फिर मौन ही रह गया।

विराज ने कहा—मन में एक ऐसी आशा को स्थान दिये रह कर, जिसका पूर्ण होना कभी सम्भव नहीं है अपने आपको भुलावे में मत डाल रखो, मेरा सर्वनाश मत करो। जैसे-जैसे समय बीतता जायगा वैसे ही वैसे ऋण का भार भी बढ़ता जायगा। दोहाई है तुम्हारी। मैं तुमसे भिक्षा माँग रही हूँ, तुम्हारे पैरों पर पड़ रही हूँ, अब कोई न कोई रास्ता निकालो।

ये बातें मुँह से निकालते-निकालते आँसुओं के भार से विराज का कण्ठ रुद्ध हो उठा। भोलानाथ मुकर्जी ने जो बातें उसके स्वामी को कही थीं, वे शूल की तरह उसके हृदय में चुभने लगीं। नीलाम्बर ने हाथ से पत्नी की आँखें पोंछ कर धीरे-धीरे कहा—अधीर होने से क्या लाभ होगा विराज ? एक वर्ष की यदि फ़मल पूरी उतर गई, तो कम से कम बारह आना भूमि मैं छुड़ा लूँगा। परन्तु, जैसा तुम कह रही हो, इस समय घबरा कर यदि सारी भूमि बेच डालूँ तो भला उसे कभी कैसे वापस ले सकूँगा ? ज़रा इस बात को तो सोचो ?

विराज आद्र स्वर में बोली—मैंने खूब सोच लिया है। आगामी वर्ष में फ़मल सोलह आना पूरी ही उतरेगी, इसका क्या ठिकाना है ? रुपयों का ब्याज तो बराबर बढ़ता ही जायगा, साथ ही साथ लोगों की खरी-खोटी भी सुननी पड़ेगी। मैं सब कुछ सहन कर सकती हूँ, किन्तु मुझसे तुम्हारा अपमान नहीं सहन किया जा सकता।

नीलाम्बर स्वयं यह बात जानता था, इसके इससे उत्तर में वह कुछ कह न सका।

विराज फिर बोली—मुझे क्या केवल इतना ही दुःख है ? रात-दिन चिन्ता में पड़े-पड़े तुम धुलते जा रहे हो, तुम्हारा शरीर बराबर सूखता जा रहा है और मैं अपनी आँखों से यह बात देख रही हूँ। तुम्हारी यह सोने की मूर्ति मेरे देखते-देखते काली होती जा रही है। अच्छा, मेरे शरीर का स्पर्श करके तुम्हीं यह बतलाओ कि यह दुःख सहन करने को शक्ति क्या मेरे शरीर में

है ? अभी कितने दिनों तक योगीन्द्र की पढ़ाई का खर्च चलाना पड़ेगा ?

“अभी एक वर्ष और । एक वर्ष की पढ़ाई समाप्त कर लेने के बाद डाक्टर हो जायगा ।”

मुहूर्त्त भर स्थिर भाव से बैठी रहने के बाद विराज बोली—
पुटी का पालन-पोषण करके हमने उसे इतनी बड़ी किया है । वह राजरानी होवे, यह हमारे लिये प्रसन्नता की ही बात है । परन्तु यदि मैं यह बात पहले जानती कि इसी पुटी के कारण हमें इतने संकटों का सामना करना पड़ेगा तो मैं उसे नदी में फेंक देती । इस तरह अपने ऊपर वज्र-प्रहार मैं कभी न होने देती । हाय नारायण ! बड़े आदमी हैं वे लोग । उन्हें किसी प्रकार का क्रोध नहीं है । उनके यहाँ किसी वस्तु की कमी नहीं है । तो भी जोक की तरह वे मेरे हृदय का रक्त बराबर चूसते जा रहे हैं । ऐसा करने में उन्हें ज़रा भी दया नहीं आती ! उनके हृदय में करुणा का संचार ही नहीं होता ।

इतना कहकर विराज ने एक लम्बी साँस ली । बाद को निस्तब्ध होकर वह बैठी रही । इस प्रकार नीरव भाव से काफ़ी समय तक बैठे रहने के बाद मुख उठा कर धीरे-धीरे वह बोली—चारों ही ओर दरिद्रता फैली हुई है, चारों ही ओर अकाल पड़ा है, निर्धन मनुष्यों को भोजन मिलने में अभी ही कठिनाई होने लगी है । कोई उपवास कर रहा है, तो कोई केवल एक बार सूखा-रूखा खाकर किसी प्रकार अपने प्राणों की रक्षा कर रहा है । ऐसे प्रतिकूल समय में भी हम दूसरे के लड़के के भविष्य के निर्माण के लिए अपने ऊपर क्यों लादे रहें ? पुटी

के मसुर को किसी वस्तु की कमी नहीं है। वह बड़ा आदमी है। यदि वह स्वयं अपने लड़के को नहीं पढ़ा सकता तो हमी लोग उसे क्यों पढ़ावें ? जो होना था, वह हो गया। अब तुम किसी से भी ऋण न लेने पाओगे।

बड़ी कठिनाई से होठों के किनारे एक रूखी हँसी लाकर नीलाम्बर ने कहा—यह सब मैं समझता हूँ विराज, किन्तु शालिग्राम की मूर्ति के सामने मैं शपथ जो कर रक्खा है, उसका क्या होगा ?

विराज तड़ाक से बोल उठी—कुछ न होगा। शालिग्राम यदि सच्चे देवता होंगे तो वे हमारा कष्ट समझेंगे। इसके सिवा मैं भी तो तुम्हारा आवा अङ्ग ही हूँ। इससे यदि कुछ पाप होगा तो मैं उसे अपने मस्तक पर धारण कर लूँगी और जन्म-जन्मान्तर तक नरक में ही डूबी रहूँगी। इसके लिए तुम्हें लेशमात्र भी भय नहीं है, तुम अब किसी से ऋण मत लेओ।

धर्मप्राण स्वामी के हृदय में जो असीम दुःख का भाव था, उसका लेशमात्र भी अंश विराज से छिपा नहीं था। किन्तु उससे अब वह सहा नहीं जाता था। यथार्थ में स्वामी ही उसके सर्वस्व थे। उसके उन्हीं स्वामी का मुख रात-दिन चिन्ताग्रस्त होने के कारण निस्तेज हुआ रहता। उनके उस मुरझाये हुए मुख की ओर ताकने पर उसका हृदय विदीर्ण हो उठता। अभी तक तो अपने आपको किसी प्रकार सँभाल कर वह बातें कर रही थी। किन्तु अब उसका मुख बन्द हो गया। वेग से विराज ने स्वामी की गोद में मुँह छिपा लिया; बाद को वह फफक-फफक कर रोने लगी।

नीलाम्बर अपना दाहिना हाथ विराज के माथे पर रखे हुए मुँह बन्द करके निश्चल भाव से बैठा रहा । काफ़ी देर तक रो लेने के बाद जब विराज के दुःसह दुःख की तीव्रता कुछ मन्द हो आई तब उसी तरह मुँह छिपा कर रोते-रोते उसने कहा— मुझे जहाँ तक स्मरण है, छुटपन से लेकर इधर कुछ दिन पहले तक कभी तुम्हारा सूखा हुआ मुख नहीं देखना मैं आया, तुम्हारे मुख पर विषाद की छाया मुझे कभी दिगवाई ही नहीं पड़ी । किन्तु आजकल जब मैं तुम्हारे मुँह की ओर ताकती हूँ तब मेरे हृदय में रावण की चिता जलने लगती है । तुम अपने भविष्य के लिए किसी प्रकार की चिन्ता न करना चाहो तो कोई बात नहीं, किन्तु मेरे भविष्य के सम्बन्ध में तो कम से कम एक बार विचार करके देख लो । क्या तुम अन्त में मुझे सच-मुच मार्ग की भिखारिणी बना कर ही छोड़ोगे ? मेरी उस समय की असहाय अवस्था तुमसे क्या सही जायगी ?

विराज की इन बातों के उत्तर में भी नीलाम्बर कुछ नहीं बोला । उसके बालों की लटें हाथ में लिये हुए उन्हें वह इस तरह से हिला-डुला रहा था, मानो पत्नी की इन समस्त बातों की ओर उसका ध्यान ही नहीं था । इतने में दरवाज़े के बाहर से ही पुरानी नौकरानी सुन्दरी ने पुकारा—बहू जो, क्या चूल्हा जला दूँ ?

विराज तड़ाक-फड़ाक उठ कर बैठ गई । अञ्चल से मुख पोंछ कर वह कमरे से बाहर निकल आई ।

सुन्दरी ने फिर कहा—चूल्हा जला दूँ ।

विराज अस्पष्ट स्वर में बोली—अच्छा, जला दे । तुम लोगो के लिए कुछ बना दूँगी, स्वयं मैं तो कुछ न खाऊँगी ।

इस बात को नीलाम्बर के कानों तक पहुँचाने के हो उद्देश्य से नौकरानी ऊँचे स्वर में बोली—बाप रे ! तो क्या तुमने रात्रि में भोजन करना एकदम से छोड़ हो दिया है ? उपवास करते-करते तो तुम सूख कर आधी हो गई हो ?

नौकरानी का हाथ पकड़ कर खाँचतो हुई विराज उसे रसोई-घर में ले गई ।

चूल्हे में जो आग जल रही थी, उसका आलोक विराज के मुख पर पड़ रहा था । समोप हो बैठे-बैठे सुन्दरी मुँह बाये उसी की ओर ताक रही थी । एकाएक वह बोला—मैं सच कहतो हूँ बहू जी, तुम्हारी जैसी सुन्दरता मैंने और किसी भी स्त्री में नहीं देखी । तुम्हारा जैसा रूप तो किसी राजा-रईस के घर की स्त्रियों में भी देखने में नहीं आता ।

नौकरानी को ओर मुँह फेर कर विराज कुछ अप्रसन्न भाव से बोली—क्या तू राजाओं और रईसों के यहाँ का हाल जानता है ?

सुन्दरी की अवस्था पैंतास-छत्तीस वर्ष का थी । अपने सौन्दर्य के लिए एक समय में उसने भी काफ़ी अच्छी ख्याति प्राप्त की थी । उसको वह ख्याति आज भी सर्वथा लुप्त नहीं हुई थी ।

सुन्दरी कहा करता थी कि कब मेरा विवाह हुआ है और कब मैं विधवा हुई हूँ, मुझे यह कुछ मालूम नहीं है । किन्तु सधवा के सोभाग्य से वह पूर्ण रूप से वञ्चित नहीं हुई । उसके ग्राम कृष्णपुर में उसके सम्बन्ध में यह मुक़ाबिले भी था । हँसकर वह बोली—राजाओं और रईसों के यहाँ का हाल थाड़ा-बहुत

अवश्य ही जानती हूँ बहू जी । अन्यथा मैं उस दिन उसे धक्का दे देती ।

सुन्दरी की यह बात सुन कर विराज बाकायदा क्रुद्ध हो उठी । वह बोली—जब तेरे मन में आता है, तब तू यही बात क्यों मुँह से निकाल बैठती है सुन्दरी ? उन लोगों का जो इच्छा हुई, वह वे कह गये । उनके लिए उन्हें धक्का देने से तेरा क्या प्रयोजन और व्यर्थ में उस प्रमङ्ग को बार-बार मेरे सामने छेड़ने की ही तुझे क्या आवश्यकता है ? तू जानती तो है इनका स्वभाव ! क्रोधी मनुष्य ठहरे ? सुनने पर पता नहीं क्या कह बैठे ?

सुन्दरी सहम गई । वह बोली—मालिक उस बात को क्यों सुनने लगे बहू जी ? वह भी कोई बात में बात है ?

“बात में बात नहीं है, यह तू समझावेगी मुझे ? यहाँ प्रश्न तो यह है कि जो बात बीत चुकी, जिसमें अब कोई तत्त्व नहीं रहा, उसकी चर्चा करने की आवश्यकता ही क्या है ?”

सुन्दरी तड़ाक से बाल उठी—वह बात बीत कहाँ चुकी बहू जी ? उसे तुम तत्त्वहीन समझे बैठी हो ? परन्तु वे कल भी मुझे बुला कर ले गये और—

विराज क्रुद्ध हो उठी । वह बोली—तू गई क्यों ? तू मेरे यहाँ नौकरी करेगी और जो बुलावेगा, उसीके यहाँ दौड़ती हुई चली जायगी ? तूने स्वयं मुझसे नहीं कहा कि वे लोग उस दिन कलकत्ता चले गये ?

सुन्दरी ने कहा—मैंने यह झूठ नहीं कहा था बहू जी ! दो महीने हुए, वे लोग चले गये थे । अब देखती हूँ कि वे फिर

आ गये हैं। और जो तुम मेरे वहाँ जाने के संबंध में कह रही हो बहू जी, सिपाही जब बुलाने के लिए आया, तब भला मैं उसकी बात मानने से इन्कार कैसे कर सकती थी ? वे यहाँ के ज़मींदार ठहरे ! हम लोग दीन-दुखिया असामी ठहरे। मैं भला किस भरोसे पर उनकी आज्ञा का उलङ्घन कर बैटूँ ?

विराज क्षण भर तक सुन्दरी की ओर ताकती रही। बाद को वह बोली—वे लोग यहाँ के ज़मींदार हैं ?

सुन्दरी मुस्कराते-मुस्कराते बोली—हाँ बहू जी, यह मुहाल उन्होंने ही ख़र्चादा है। वे तंबू खड़ा करके यहाँ पड़े हुए हैं। सच कहती हूँ बहू जी, वे ऐसे-वैसे आदमी नहीं हैं। पूरे राज-कुमार तो राजकुमार ! मुख और आँखों में—

सुन्दरी की बात काट कर विराज एकाएक बोल उठी—रहने दे, रहने दे, चुप रह। ये सब बातें मैं तुझसे नहीं पूछ रही हूँ। मैं तुझसे केवल इतना ही जानना चाहती हूँ कि उन्होंने तुझसे क्या कहा है ?

विराज की यह बात सुनकर सुन्दरी मन ही मन अप्रसन्न हो उठी। परन्तु अपना वह भाव छिपाकर लुब्ध स्वर में बोली—कहा क्या है बहू जी ? वे केवल तुम्हारी ही चर्चा कर रहे थे।

विराज “हूँ” कह कर चुप रह गई।

अब इस प्रसंग को ज़रा स्पष्ट कर देना आवश्यक हो गया है। दो वर्ष पहले यह मुहाल कलकत्ता के एक ज़मींदार के हाथ में चला गया था। उम ज़मींदार का छोटा लड़का बड़ा उदण्ड और दुराचारी था। उसे सुधारने के विचार से पिता ने यह सोचा कि कलकत्ता के वातावरण से हटा कर यदि इसे आस-पास

के किसी इलाक़े में कर दिया जाय और उस इलाक़े के प्रबन्ध की बहुत कुछ ज़िम्मेदारी इसके ऊपर छोड़ दी जाय तो सम्भवतः यह काम-काज भी कुछ सोख लेगा और इसमें थोड़ा-बहुत संयम भी आ जायगा। अपने इस विचार को कार्य रूप में परिणत करने के लिये उक्त ज़मादार ने अपने राजेन्द्रकुमार को गत वर्ष यहाँ भेज दिया। सतग्राम में ज़मींदार का कोई बंगला अथवा रहने के लिए कोई उपयुक्त स्थान नहीं था, इससे गाँव के बाहर ग्रैंड ट्रंक रोड के पास ग्राम के एक बगोचे में तम्बू खड़ा करके बंद रहने लगा।

सतग्राम में आकर राजेन्द्रकुमार ने इलाक़े का काम-काज समझने की इच्छा कभी नहीं की। चिड़ियों का शिकार करने का उसे बड़ा शौक था, विस्की का फ़्लैट पीठ पर बाँधे हुए वह बन्दूक और चार-पाँच कुत्तों साथ में लेकर दिन भर नदी के किनारे-किनारे वन-वन में घूम-घूम कर चिड़िया मारा करता। आज से छः महीना पहले शिकार के ही फेर में घूमते-घूमते राजेन्द्रकुमार ने एक दिन विराज को देख लिया और देखते ही वह उस पर मुग्ध हो गया।

विराज नदी के जिस घाट पर स्नान किया करती थी, वह चारों ओर से बड़े-बड़े वृक्षों से ढका हुआ था। इससे वहाँ पर स्नान करते समय दूर के लोगों की दृष्टि पड़ने की कोई आशङ्का नहीं रहा करती थी। यही कारण था कि विराज खूब निर्भय और निस्संकोच होकर नदी में स्नान कर रही थी। स्नान करने के बाद उसने घड़े में जल भरा और गीला ही वस्त्र पहने हुए वह घर की ओर चली। अभी सँभ होने में ज़रा कुछ विलम्ब

था । अस्ताचल के शिखर पर विराजमान सूर्य की मुंनहली आभा विराज के सौन्दर्य को द्विगुणित कर रही थी । ठीक उसी समय चिड़ियों की तलाश करते-करते राजेन्द्रकुमार भी आ पहुँचा और घाट के समीप ही जो समाधि-स्तूप था, उसी पर खड़े-खड़े वह विराज को देखने लगा । मनुष्य में इतना भी अधिक सौन्दर्य हो सकता है, इस बात का तो उसे एकाएक विश्वास ही नहीं हो पाता था । पत्थर की मूर्ति-सा होकर वह अनिमेष दृष्टि से उसकी ओर ताकता रहा । इधर एकाएक ऊपर की ओर दृष्टि जाने पर विराज ने जब एक अपरिचित पुरुष को अपनी ओर ताकते हुए देखा, तब गीले वस्त्रों से ही किसी प्रकार लज्जा का निवारण करके वह तेज़ी से पैर बढ़ाती हुई चली गई । राजेन्द्र-कुमार भी जब तक दृष्टि पहुँच सकी, तब तक पत्थर की मूर्ति की तरह खड़े-खड़े विराज की अपार रूप-राशि को देख कर सुख का अनुभव करता रहा । अन्त में जब वह उसके दृष्टि-पथ से परे हो गई तब ज़रा देर तक हक्का-बक्का होकर खड़े रहने के बाद वह धीरे-धीरे वहाँ चला गया । रास्ता भर वह बराबर यहाँ सोचता रहा कि इतनी सुन्दरी स्त्री भला यहाँ कैसे आई ? यहाँ चारों ओर जंगल ही जंगल है । जो गाँव है, वह बिलकुल छोटा-सा है । कोई प्रतिष्ठित घराना यहाँ पर रहता नहीं । राजभवन में रहने की योग्यता रखनेवाली यह सुन्दरी ऐसे उजाड़ स्थान में कहाँ से आ गई ? इसका जैसी सुन्दरी स्त्री तो जीवन में मैंने कभी देखी ही नहीं । अन्त में बड़ी छानबीन करके रात्रि में ही राजेन्द्र-कुमार ने उस अनन्य सुन्दरी का परिचय प्राप्त कर लिया । तबसे वही उसके ध्यान का विषय हो गई । राजेन्द्रकुमार के मस्तिष्क

में किसी दूसरे विषय की चिन्ता के लिए स्थान नहीं रह गया। उस दिन के बाद और भी दो बार विराज और राजेन्द्रकुमार की देखा-देखी हुई थी।

घर में आकर विराज ने सुन्दरी को बुलाया। उसने उससे कहा—सुन्दरी, घाट पर जाकर देख तो, कोई आदमी परीस्थान के ऊपर खड़ा है ! उससे कह दे कि वह वहाँ से चला जाय और फिर मेरे बगीचे में पैर न रखे।

विराज के कहने के अनुसार सुन्दरी तुरन्त ही घाट पर पहुँची और वह इसीलिए वहाँ पर पहुँची कि जो आदमी खड़ा है, उसे हट जाने को कहकर सावधान कर दे कि भविष्य में वह यहाँ कभी न आवे। परन्तु वहाँ पहुँच कर वह अवाक् हो गई। सुन्दरी ने कहा—आप हैं बाबू साहब !

सुन्दरी की ओर ताक कर राजेन्द्रकुमार ने कहा—क्या तुम पहचानती हो मुझे ? सुन्दरी ने कहा—हाँ सरकार, भला आपको कौन नहीं पहचानता !

“मैं कहाँ रहता हूँ ? जानती हो तुम !”

सुन्दरी ने कहा—हाँ सरकार, जानती हूँ।

राजेन्द्रकुमार ने कहा—क्या तुम आज ज़रा देर के लिए वहाँ आ सकती हो !

सुन्दरी ने एक लज्जापूर्ण हँसी हँसकर मुख नीचा कर लिया। बाद को धीरे-धीरे वह बोली—क्या बात है सरकार !

“तुमसे कुछ काम है, ज़रा देर के लिए आ जाना।”—

यह कहकर कन्धे पर बन्दूक रखे हुए राजेन्द्रकुमार वहाँ से चला गया ।

सुन्दरी उम दिन से लोगों की आँखें बचा-बचा कर एकान्त के समय कई बार राजेन्द्रकुमार के खेमे में गई थी । राजेन्द्रकुमार में और उसमें बहुत-सी बातें भी हुई थीं । किन्तु वहाँ से लौट कर आने पर दो-एक बार ज़रा-सा इशारा कर देने के सिवा विराज के सामने वह किसी भी बात की चर्चा करने का साहम नहीं कर सकी । सुन्दरी नासमझ तो थी नहीं । वह विराज वहाँ को पहचानती थी । उसे यह भनी-भाँति मालूम था कि यह स्त्रा बाहर से चाहे कितनी ही मधुर और कोमल क्यों न मालूम पड़े, किन्तु भीतर से इसकी प्रकृति बहुत ही उग्र है, पत्थर के ही समान यह कठोर है । इसके सिवा एक और बात थी जिसके कारण सुन्दरी आज तक इच्छा होने पर भी डर के मारे विराज के सामने मुँह नहीं खोल सकी । वह बात यह था कि विराज के शरीर में साहस की मात्रा बहुत अधिक थी । चाहे मनुष्य हो, चाहे साँप-बिच्छू हो और चाहे भूत-प्रेत हो, डरना तो वह किसी से जानती ही नहीं थी ।

चूल्हे की लकड़ी को ज़रा-सा ठेल कर विराज ने मुँह फेर लिया और उसकी ओर ताकते-ताकते वह बोली—अच्छा सुन्दरी, तू तो कई बार वहाँ आई-गई है, तेरी उनको बहुत-सी बातें भी हुई हैं, किन्तु मुझसे तो तूने इस सम्बन्ध में कभी कुछ नहीं बतलाया !

विराज की यह बात सुनकर सुन्दरी बहुत ही चकराई । उसका समझ में यह न आ सका कि मैं मालिकिन की इस बात

का क्या उत्तर दूँ । परन्तु क्षण भर के बाद ही उसने अपने आपको सँभाल लिया । वह बोली—क्यों बहूजी, तुमसे किसने कहा कि मैं वहाँ जाकर बहुत-सी बातें कर आई हूँ ?

विराज ने कहा—मुझसे किसी ने नहीं कहा, मैं स्वयं जानती हूँ । हम लोगों के मस्तक के पीछे दो आँखें और दो कान और हैं ? कल कितने रुपये इनाम ले आई तू ? दस रुपये न ?

विस्मय के मारे सुन्दरी अवाक् हो उठी । उसके मुख पर एकाएक मर्लानता की इतनी प्रगाढ़ छाया आ गई कि चूल्हे की आग के धुँधले प्रकाश में भी विराज ने उसे देख लिया । उसने यह भी अनुभव कर लिया कि सुन्दरी को इस समय कोई उत्तर नहीं सूझ रहा है ।

ज़रा-सी मुस्कराहट के साथ विराज ने कहा—सुन्दरी, तेरा सीना इतना चौड़ा नहीं है कि तू मेरे सामने मुँह खोल सके । किन्तु तू बेकार वहाँ क्यों आती-जाती रहती है ? अभी तो तुझे रुपये मिल रहे हैं, इससे अच्छा मालूम पड़ रहा है किन्तु बाद को इन रुपयों के ही कारण तुझे एक बड़े आदमी का क्रोध-भाजन होना पड़ेगा । कल से तू इस घर में पैर न रखना । तेरे छुए हुए जल से पैर तक धोने में मुझे घृणा मालूम पड़ती है । पहले से तेरा सारा हाल मुझे मालूम नहीं था । तो भी दो दिन पहले सुन चुकी हूँ । किन्तु तू जा और अञ्चल की छोर में तूने जो दस रुपये का नोट बाँध रक्खा है, उसे लौटाल दे । वह नोट लौटालने के बाद जिस तरह तू एक दुःखिया के घर में पैदा हुई है, उसी तरह मेहनत-मज़दूरी करके अपने जीवन का

अवशिष्ट समय व्यतीत कर दे । जब तेरी अवस्था अनुकूल थी तब तो तुझे जो कुछ करना था, वह तूने कर डाला । अब वह लौटने को नहीं है । परन्तु अपने समान ही दूसरों का भी जन्म बिगाड़ने का उद्योग तू मत कर ।

सुन्दरी ने कुछ कहने का उद्योग किया, किन्तु उसकी ज़बान मुख के भीतर ही रह गई ।

विराज ने यह भी देखा । देखकर वह बोली—भूठी बात मुँह से निकालने से लाभ क्या होगा ? ये सब बातें मैं किसी से नहीं बतलाऊँगी । तेरे अञ्चल में जो नोट बँधा है, उसके सम्बन्ध में मैंने पहले यह नहीं समझा था कि यह नोट तुझे कहाँ से मिला है । अब मैं समझ सकी हूँ । जा, आज से मैं तुझे जवाब दे रही हूँ । कल से तू फिर मेरे घर में पैर न रखना ।

यह कैसी अनहोनी बात ! अत्यन्त ही अधिक विस्मय के कारण सन्नाटे में आकर सुन्दरी बैठी रही । इस घर से उसकी नौकरी इस तरह एकाएक छूट सकती है यह बात उसे असम्भव-सी मालूम पड़ रही थी और उसकी बुद्धि इसकी सत्यता को सरलतापूर्वक स्वीकार करने को तैयार नहीं हो रही थी । सुन्दरी यहाँ की बहुत पुरानी नौकरानी थी । उसके सामने विराज का विवाह हुआ था, हरिमति का जन्म हुआ था । नीलाम्बर की माँ उसे इतना अधिक मानती थीं कि तीर्थयात्रा तक में वे उसे अपने साथ में ले गई थीं । इस प्रकार इतने दिनों से घनिष्ठ भाव से रहते-रहते सुन्दरी भी एक प्रकार से इस परिवार का एक अङ्ग हो गई थी । आज उसी सुन्दरी को विराज बहू ने घर में पैर रखने तक के लिए मना कर दिया । क्षोभ और अभिमान का भाव ठेलता

हुआ सुन्दरी के कण्ठ तक आ गया । उसके अन्तस्तल को ठेला-ठेल कर कितनी बातें आने लगीं, जिनके द्वारा सुन्दरी अपनी सफाई देने का प्रयत्न करती और विराज से कहती कि मुझे इस तरह निकाल देना तुम्हारे लिए किसी प्रकार भा उचित नहीं है । परन्तु हृदय के इन सभी आवेगों, अन्तस्तल से निकली हुई पक्ष-समर्थन की सभी बातों, को दौड़ केवल सुन्दरी की जिह्वा तक ही रही, मुख से वह कोई शब्द निकाल न सकी । बिह्वल-सी होकर वह मालिकिन की ओर ताकती रह गई ।

विराज ने मन ही मन इन समस्त बातों को अनुभव किया, किन्तु अब वह स्वयं भी कुछ नहीं बोली । मुँह फेा कर उसने देखा तो बटलोई का जल कम हो गया था । समीप ही पीतल का घड़ा भरा हुआ रक्खा था । लोटा लेकर वह उस घड़े के पास तक गई और पानी उँडेलने जा रही थी, किन्तु पता नहीं, क्या सोच कर उसने लाटा भूमि पर रख दिया । वह बोली — नहीं, तेरे हाथ के जल का स्पर्श करने पर भी उनका अमङ्गल होगा,—तूने इसी हाथ से रुपये लिये हैं ।

सुन्दरी निरस्कार से भरी हुई इन बातों का कोई उत्तर नहीं दे सकी ।

विराज ने एक लालटेन और जलाई । एक हाथ में उसने वह लालटेन ली और दूसरे हाथ में घड़ा लिया । रात्रि के प्रगाढ़ अन्धकार में ग्राम के बगोचे के भीतर से होकर वह जल भरने के लिए नदी-तट पर चली गई । विराज के चले जाने पर सुन्दरी के मन में आया कि मैं भी पीछे-पीछे जाऊँ । किन्तु नदी-तट के भयङ्कर दृश्य का स्मरण आते ही उसका साहस जाता रहा ।

एक तो उस समय इतना अधिक अन्धकार था कि हाथ फैला कर टटोलने पर भी कुछ सूझता नहीं था, दूसरे भाड़-भङ्गाड़ से घिरे हुए सङ्कीर्ण मार्ग से जाना था । चारों ओर प्राचीर थे, सप्तग्राम के कितने ही जाने हुए और कितने अनजान व्यक्तियों के समाधि-स्तूप थे, बहुत पुराना बट-वृक्ष था । ये सभी आ-आकर सुन्दरी के मानस-पट पर उदित हो गये और उसके सारे शरीर में काँटे से चुभने लगे । भय के मारे वह ँँड़ी से लेकर चोटी तक थर-थर काँप उठी । अस्वष्ट स्वर में—“बाप रे !” यह कह कर वह बैठी रह गई ।

(५)

दो दिन के बाद नीलाम्बर ने कहा—क्यों विराज, आजकल सुन्दरी क्यों नहीं दिग्वाई पड़ती ?

विराज ने उत्तर दिया—मैंने उसे निकाल दिया है । नीलाम्बर को पत्नी की इस बात पर विश्वास नहीं हो सका । उसने यही समझा कि विराज हँसी कर रही है । इससे वह बोला—तुमने बहुत अच्छा किया है ! बताओ उसे क्या हुआ है ?

विराज ने कहा—हुआ क्या है ? मैंने सचमुच उसे निकाल दिया है ।

नीलाम्बर को अब भी विश्वास नहीं हो सका । बहुत ही विस्मित होकर पत्नी के मुँह की ओर ताकते हुए उसने कहा—उसे तुम क्यों निकालोगी ? यदि वह कुछ अपराध भी करे तो भी उसे निकालना न चाहिए । क्या तुम्हें मालूम है कि वह कितनी पुरानी नौकरानी है ? उसने ऐसा कौन-सा अपराध किया है कि तुम उसे निकाल दोगी ?

विराज ने कहा—मैंने यह सब सोच समझ लिया है और सोचने-समझने के बाद उसे निकाल देने में ही भलाई मालूम पड़ी है ।

नीलाम्बर ने रुष्ट होकर कहा—ऐसी कौन-सी भलाई मालूम पड़ी है यही तो मैं जानना चाहता हूँ ?

विराज स्वामी के मन का भाव ताड़ गई । क्षण भर तक उसके मुँह की ओर मौन भाव से ताकते रहने के बाद वह बोली—मुझे निकालने में भलाई मालूम पड़ी, इससे मैंने निकाल दिया, तुम्हें यदि रखने में भलाई मालूम पड़े तो तुम फिर बुलाकर रख लो । यह कह कर उत्तर के लिए प्रतीक्षा किये बिना ही वह रसोई-घर में चली गई ।

नीलाम्बर ने समझ लिया कि विराज रुष्ट हो गई है । इससे वह और कुछ नहीं बोला ।

घंटा भर के बाद बाहर से लौटने पर रसोई घर के द्वार के बाहर खड़े-खड़े मन्द स्वर में उसने कहा—सुन्दरी को तुमने निकाल तो दिया, किन्तु घर के सारे काम-काज कौन करेगा ?

स्वामी को यह बात सुनकर विराज मुँह फेर कर हँसी, वह बोली—तुम ।

नीलाम्बर भी हँस पड़ा । वह बोला—तो लाओ, ये जले हुए बर्तन मल कर साफ़ कर ले आऊँ ।

विराज हाथ में जो चिमटा लिये हुए थी, उसे उसने झुक से फेंक दिया और हाथ धोकर वह स्वामी के समीप आ गई । बाद को उसकी पद-धूलि मस्तक से लगाकर वह बोली—तुम यहाँ से जाओ । तुमसे ज़रा-सा मज़ाक करना भी बड़ा कठिन

है । कारण यह है कि तुम ऐसी बात मुँह से निकाल जाते हो, जिसे कानों से सुनने से भी पाप लगता है ।

नीलाम्बर सकुचित हो उठा । वह बोला—यह बात सुनने से भी पाप लगता है ? तुझे किससे पाप नहीं लगता, यही मैं नहीं समझ पाता हूँ विराज !

विराज बोली—तुम सब समझते हो । यदि न समझते होते तो इतने काम-काज होत हुए भी बर्तन मलने को ही बात न मुँह से निकालते । जाओ, अब विलम्ब न करो । स्नान कर आओ, मेरी रसोई तैयार हो गई है ।

नीलाम्बर चौखट पर बैठ गया । उसने कहा—सच-सच बताओ विराज, घर-गृहस्थी का काम कौन करेगा ?

दृष्टि उठा कर विराज बोली—अब काम ही करने को क्या है ? पुटी है नहीं, उसके छोटे भैया भी अलग रहते हैं । घर में अब आदमी ही कहाँ रह गये हैं, जिनके कारण काम बढ़ सके । कोई काम न होने के कारण मैं तो स्वयं ममस्त दिन बेकार बैठी रहती हूँ । तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो । जब मेरा कोई काम रुकेगा, तब मैं तुमसे कहूँगी ।

नीलाम्बर बोला—नहीं विराज, यह न होगा, मैं वे काम तुम्हें कभी न करने दूँगा, जो नोकरों या नोकरानियों के करने के हैं । सुन्दरी ने कोई अपराध नहीं किया है, केवल खर्च घटाने के लिये ही तुमने उसे निकाला है । ठाक है कि नहीं ?

विराज ने कहा—नहीं, यह ठीक नहीं है । उसने वास्तव में अपराध किया है ।

“उसने कौन-सा अपराध किया है ?”

“यह मैं न बतलाऊँगी । बैठे न रहो । तुम जाकर स्नान कर आओ ।” —यह कह कर विराज रसोई घर से निकल गई । ज़रा देर के बाद लोट आने पर जब उसने स्वामी को फिर उसी प्रकार बैठे देखा तब बोली—तुम गये नहीं ? अभी तक बैठे ही हो ?

बहुत ही मन्द और कोमल स्वर में नीलाम्बर बोला—जाता हूँ । किन्तु विराज, यह तो मुझसे न हो सकेगा । मैं दम्हें उज्ज्व-वृत्ति कैसे करने दूँ ?

स्वामी का यह बात सुन कर विराज प्रमत्त नग हुई । क्षण भर तक ताकन के बाद वह बोली—क्या करागे, बताओ तो ?

“याद तुम सुन्दरी को नहीं रखना चाहती हो तो न सही, कोई दूसरी ही नौकरानी रख लूँ । तुम अकेली ही कैसे रहोगी ?”

“मैं चाहे कैसे भी रहूँ, किन्तु अब मैं नौकरानी न रखूँगी ।”

नीलाम्बर ने कहा—नहीं, यह न होगा । मैं जब तक गृह-स्थी में हूँ, तब तक तो मान-अपमान का ध्यान रखना ही पड़ेगा । भला यह बात जब गाँव के लोगों को मालूम होगी, तब वे क्या कहेंगे ?

विराज समीप ही बैठ गई । वह बोली—वास्तव में भय तुम्हें इस बात का है कि सुनने पर गाँव के लोग मुझे क्या कहेंगे । तुम जो यह कह रहे हो कि मैं अकेली कैसे रहूँगी और घर के काम-काज करने में मुझे क्लेश होगा, यह तो केवल बहाना है ।

पत्नी की यह बात सुन कर नीलाम्बर लुब्ध हो उठा । साथ ही साथ उसे विस्मय भी हुआ । दृष्टि उठा कर वह बोला—यह मेरा बहाना है ?

विराज बोली—हाँ, बहाना है । आजकल मुझे सारी बातें मालूम हो गई हैं । यदि तुम मेरे मुँह की ओर ताकते, यदि तुम मेरे सुख-दुःख के सम्बन्ध में ज़रा भी सोच-विचार करते, यदि तुम मेरी एक भी बात मानते, तो आज मेरी यह अवस्था न होती ।

नीलाम्बर ने कहा—मैं तुम्हारी एक भी बात नहीं मानता हूँ ?

विराज ज़ोर देकर बोली—नहीं, तुम मेरी एक भी बात नहीं मानते हो । मैंने जब कभी कोई बात कही है, तब तुमने उसे किसी न किसी बहाने से टाल ही दिया है । तुमने सदा केवल इन्हीं बातों पर विचार किया है कि अमुक कार्य करने से मुझे पाप होगा, अयश होगा, समाज में मैं अपमानित होऊँगा । परन्तु क्या तुमने कोई कार्य करने से पहले यह भी सोचा है कि मेरे इस कार्य का मेरी स्त्री की अवस्था पर कैसा प्रभाव पड़ेगा ?

नीलाम्बर ने कहा—तो क्या मेरा और तुम्हारा पाप एक नहीं है ? मेरी अकीर्ति होने पर क्या तुम्हारी अकीर्ति न होगी ?

अब विराज प्रकट रूप से क्रुद्ध हो उठी । वह बोली—देखो, ये सब बच्चों को भुलावे में डालनेवाली बातें हैं । अब मेरी अवस्था वैसी नहीं रह गई कि मैं इस तरह की बातों से भुलावे में आ जाऊँ ।

इतना कह कर विराज क्षण भर तक फिर चुप रही । बाद को वह बोली—तुम्हारे दिमाग में केवल अपनी बातें आती हैं, दूसरों की बातों पर तुम विचार नहीं करते । आज बड़े दुःख के साथ मुझे यह बात तुम्हारे सामने मुँह से निकालनी पड़ी है । आज तो तुम केवल इतनी-सी बात के कारण लज्जा का अनुभव कर रहे हो कि मैं घर के वे सभी काम अपने हाथ से कर लिया

करती हूँ, जो किसी नौकरानी से कराये जा सकते हैं। परन्तु भगवान् न करें कि कल तुम्हें कुछ हो जाय। यदि कहीं संयोगवश ऐसा हो गया, तब तो परमों मुझे मुट्ठी भर अन्न के लिए दूम्रों के घर में दासी-वृत्ति करते फिरना पड़ेगा। इतना अवश्य है कि उस अवस्था में तुम्हें वैसा काम करते हुए मुझे न ता आँखों से देखना पड़ेगा और न मेरा वह हाल कानों से सुनना पड़ेगा। इससे तुम्हारे लिए स्वभावतः लज्जा की कोई बात न हागा। तुम्हें किसी प्रकार की चिन्ता भी न करना पड़ेगी। यही न ?

नीलाम्बर एकाएक इस अभियोग का कोई उत्तर नहीं दे सका। ज़रा देर तक मौन भाव से नाचे की ओर ताकते रहने के बाद उसने कोमल स्वर में कहा—यह कभी नही सम्भव है कि तुम अपने मन में सचमुच ऐसा ही समझती हो। दुःख-क्लेश होने के कारण तुम्हें क्रोध आ गया है इसीलिए तुम ऐसा कह रही हो।

विराज ने कहा—निस्मन्देह पहले मैं ऐसा ही समझती थी। परन्तु जिस प्रकार कष्ट में पड़े बिना मनुष्य यह बात ठोक-ठोक नहीं जान पाता कि कष्ट क्या चोज़ है ठोक उसी प्रकार समय आये बिना पुरुष को मोह-ममता का भा परिचय नहीं मिलता। किन्तु मैं ऐसे समय में जब कि दाम्हर हो गया है और भोजन तैयार है, तुमसे झगड़ा-झगड़ा नही करना चाहता हूँ। मैं जो कह रहा हूँ, तुम वही करो, जाग्रा स्नान कर आओ।

“जाता हूँ” यह कह कर नीलाम्बर चुपचाप बेंठा रहा।

विराज ने फिर कहा—हमारा पुटो का विवाह हुए आज दो वर्ष बात चले हैं। उससे पहले से लेकर आज तक का एक-एक

बात पर विचार करके मैंने मन ही मन समझ लिया है। इस बीच में तुमने मेरी एक भी बात नहीं सुनी। मैंने जब कभी कोई बात कही है, तभी तुमने उसे काट दिया है और सदा अपनी इच्छा के ही अनुसार कार्य करते आये हो। मनुष्य घर के नौकरों और नौकरानियों की भी दो-एक बात मान लेता है। किन्तु तुमने कभी मेरी एक भी बात नहीं माना।

नीलाम्बर कोई बात मुँह से निकालने ही जा रहा था, इतने में उसे रोकते हुए विराज फिर बाल उठी—नडा, नहीं, मैं तुमसे बहस न करूँगी। तुमसे ज़बान लड़ाना मेरे लिए बहुत ही लज्जा की बात है। मैंने इष्ट-देवता का नाम लेकर इस बात के लिए सौगन्ध भी खाई है कि मैं कभी तुम्हें एक बात भी न कहूँगी। बात उठ पड़ी इसीलिए मुझे ये बातें मुँह से निकालनी पड़ीं, अन्यथा तुम्हें ऐसी बातें न सुननी पड़तीं। छुटपन का एक घटना है। शायद तुम्हें अब वह स्मरण न होगी। मस्तक में पीड़ा होने के कारण मैं एक दिन सो गई थी और दरवाज़ा खोलने के लिए तुम्हें कई बार पुकारना पड़ा। अन्त में काफ़ी देर के बाद जब मैंने दरवाज़ा खोल दिया, तब तुम मुझे मारने दाड़े। मेरी इस बात पर कि मेरे मस्तक में पीड़ा हा रही है, तुम्हें विश्वास नहीं हुआ। उसी दिन मैंने इस बात के लिए सौगन्ध खा ला कि तबोअत खराब होने का बात मैं तुमसे कभी न कहूँगी। मेरी उस दिन की प्रतिज्ञा आज तक भंग नहीं हो पाई है।

नीलाम्बर ने जैसे ही मुख ऊपर किया, वैसे ही पति-पत्नी की दृष्टि परस्पर मिल गई। वह एकाएक उठ कर विराज के समीप आ गया। उसके दोनों हाथ उसने पकड़ लिये। बाद को

उद्भिन्न स्वर में वह बोल उठा—नहीं विराज, तुम्हारा शरीर कभी नहीं अच्छा रहता । तुम्हें क्या क्लेश है, यह बात मुझसे बतला दो । अब संकोच मत करो, अपने रोग का हाल तुम्हें बतलाना ही पड़ेगा ।

धीरे-धीरे हाथ छुड़ाने का उद्योग करते-करते, विराज बोली—छोड़ो दर्द करता है ।

“दद करता होगा ! पहले बतलाओ कि तुम्हें क्या हुआ है ?”

एक रूखी हँसी हँस कर विराज बोली—हुआ क्या है ! मुझे कुछ तो नहीं हुआ है । मैं बहुत अच्छी तरह हूँ ।

नीलाम्बर ने अविश्वास का भाव प्रकट करते हुए कहा—नहीं, यह बात ग़लत है । तुम्हारी तबीयत अच्छी नहीं है । यदि तुम्हारे शरीर को कोई विशेष क्लेश न होता तो तुम इतने दिन की पुरानी बात छेड़ कर मेरे हृदय को इस प्रकार क्लेश न देती । विशेषतः ऐसी परिस्थिति में जबकि मैं उसके लिए तुमसे कितने बार क्षमा माँग चुका हूँ ।

“अच्छा, और किमी दिन भी इस बात की चर्चा न करूँगी ।” यह कह कर विराज ने अपने आपको छुड़ा लिया और वह ज़रा-सा दूर हट कर बैठी ।

नीलाम्बर ने विराज का तात्पर्य समझ लिया । किन्तु उसने और कुछ नहीं कहा । दो-तीन मिनट तक बैठे रहने के बाद वह उठ गया ।

रात्रि में लालटेन की रोशनी में बैठे-बैठे विराज चिट्ठी लिख रही थी । नीलाम्बर खाट पर चुपचाप लेटा हुआ था । पत्नी की ओर ताकते-ताकते एकाएक वह बोला—इस जन्म में तुमने किसी

प्रकार का अपराध किया है, यह बात तो तुम्हारा शत्रु भी नहीं कह सकता क्योंकि बाल्यकाल से लेकर आज तक तुममें कभी किसी प्रकार का दोष देखने में आया ही नहीं। परन्तु पूर्व जन्म में तुमसे अवश्य कोई पाप हो गया होगा। अन्यथा, ऐसा किसी प्रकार भी न हुआ होता।

मुख उठा कर विराज बोली—कैसा न हुआ होता ?

नीलाम्बर ने कहा—भगवान् ने तुम्हारे शरीर की इतनी सुन्दरता के साथ रचना की है, तुम्हें इतनी अपूर्व रूप-राशि दे कर उन्होंने इस संसार में भेजा है कि तुम समस्त प्रकार की सुख-सामग्रियों से परिपूर्ण किसी राजप्रासाद में रहने के ही उपयुक्त हो। उन्होंने राजरानी का-सा ही हृदय भी देकर तुम्हें इस धरा-धाम में अवतीर्ण किया है। किन्तु ?

“किन्तु क्या ?”

नीलाम्बर चुप रह गया।

क्षण भर तक उत्तर के लिए प्रतीक्षा करने के बाद विराज रुखे स्वर में बोली—भगवान् तुम्हें यह खबर कब दे गये ?

आँखें और कान होने पर भगवान् सभी को सब प्रकार की खबरें सदा दिया करते हैं।

विराज “हुँः” कह कर चिट्ठी लिखने लगी। कुछ क्षण तक चुप रहने के बाद नीलाम्बर ने कहा—अभी तुम कह रही थीं कि मैं तुम्हारी कोई भी बात नहीं मानता हूँ। सम्भव है कि यही बात सच हो। किन्तु इसमें क्या केवल मेरा ही दोष है ?

मुख ऊपर करके विराज ने फिर देखा। वह बोली—अच्छा, तो कोई मेरा ही दोष बतला दो।

नीलाम्बर ने कहा—मैं तुम्हारा दोष न बतला सकूँगा । किन्तु आज एक सच्ची बात कह डालूँगा । तुम अपने साथ दूसरी की तुलना करके ही देखा करती हो । इस बात पर तो तुम एक बार भी नहीं विचार किया करती हो कि तुम्हारे-जैसी कितनी स्त्रियाँ ऐसे निर्गुण मूर्ख के हाथ में पड़ा करती हैं ? तुम जो मेरे जैसे आदमी के हाथ में पड़ गई हो यह तुम्हारे पूर्व जन्म के पाप का फल है । अन्यथा तुम्हारे जीवन में तो कभी किसी प्रकार का दुःख-क्लेश सहन करने का अवसर ही नहा आना चाहिए था ।

विराज चुन्चाप चिट्ठी लिखने लगी । सम्भवतः उसने अपने मन में यही निश्चय किया था कि मैं इन बातों का कोई उत्तर न दूँगी । परन्तु उससे मोन न रहा गया । मुँह फेर कर विराज ने स्वामी से पूछा—क्या तुम यह समझते हो कि तुम्हारा ये बातें सुनकर मैं प्रसन्न हो उठती हूँ ?

‘कौन सी बातें ?’

विराज ने कहा—ये ही बातें, तुम जो कहते हो कि मैं राज-रानी हो सकता थी, केवल तुम्हारे हाथ में पड़कर ऐसी हो गई । इस तरह की बातें सुनकर क्या मुझे प्रसन्नता होती है, अथवा जो कोई ऐसी बात कहता है, उसका मुँह देखने की मुझे इच्छा होती है ?

नीलाम्बर ने देखा कि विराज अत्यन्त ही क्रुद्ध हो उठी है । उसके उन बातों के कारण—विराज इतना अधिक बुरा मान जायगा, ऐसी आशङ्का नीलाम्बर को नहीं थी । इसीलिए वह मन ही मन सङ्कुचित और कुण्ठित हो उठा । परन्तु अब क्या कह कर

वह पत्नी को प्रसन्न करे, एकाएक यह भी उसकी समझ में नहीं आ सका ।

विराज ने कहा—रूप ! रूप ! रूप ! सुनते-सुनते मेरे कानों के पर्दे फट गये । जो दूसरे लोग मेरे रूप के सम्बन्ध में चर्चा किया करते हैं, उनकी दृष्टि केवल रूप पर ही पड़ा करती होगी और वे उसकी चर्चा कर सकते हैं । परन्तु तुम तो मेरे स्वामी हो । तुम्हारे साथ में रहते-रहते मैं इतनी बड़ी हुई; तुम भी क्या केवल मेरे इस रूप को ही देखा करते हो ? क्या केवल रूप ही मेरी सबसे अधिक महत्त्व की वस्तु है ? क्यों तुम इस तरह की बात मुँह से निकाला करते हो ? क्या मैं रूप का व्यापार किया करती हूँ या इस रूप के ही द्वारा तुम्हें भुला रखना चाहती हूँ ?

पत्नी की भाव भङ्गी देखकर नीलाम्बर भयभीत हो उठा । बहुत ही दबी हुई ज़बान से उसने कहा—नहीं, नहीं, ऐसी बात नहीं है ।

स्वामी को और कुछ कहने का अवसर न देकर विराज बीच में ही बोल उठी । उसने कहा—बात ठीक यही है । इसीलिए मैंने उस दिन पूछा था कि यदि मैं काली-कलूटी होती तो भी क्या तुम मुझे इसी तरह प्यार किया करते या नहीं । तुम्हें स्मरण है या नहीं ?

मस्तक हिला कर नीलाम्बर ने कहा—स्मरण है । किन्तु उस समय तुम्हीं ने तो कहा था कि.... विराज ने स्वामी को आगे कुछ कहने से रोक दिया । वह बोली—हाँ, मैंने कहा था कि काली-कलूटी होने पर भी तुम मुझे प्यार करते, क्योंकि तुमने मेरे साथ विवाह किया है । गृहस्थ के घर में मैंने जन्म ग्रहण किया है और गृहस्थ के ही घर में मेरा विवाह हुआ है । मुझे

इस तरह की बातें सुनाने में तुम्हें लज्जा नहीं आती ? क्या तुम पहले भी कभी इस तरह की बातें मुझसे कहा करते थे ?

ये सब बातें मुँह से निकालते-निकालते क्रोध और अभिमान के मारे विराज के नेत्रों में जल आ गया। लालटेन के उजाले में वह जल चमचमा उठा।

यह देखकर नीलाम्बर उतावली के साथ उठ आया। पत्नी के समीप आकर उसने उसका हाथ पकड़ लिया।

नीलाम्बर के सम्बन्ध में एक दिन विराज ने स्वयं ही यह बात कही थी कि जब ये मेरा हाथ पकड़ लेते हैं, तब मुझे क्रोध नहीं रह जाता। नीलाम्बर को अकस्मात् वही बात स्मरण हो आई और तुरन्त ही पत्नी के पास पहुँच कर उसका दाहिना हाथ अपने दोनों हाथों में लिये वह चुपचाप बैठा रहा।

विराज ने बायें हाथ से अपने आँसू पोंछ डाले। उस दिन रात्रि में वे दोनों ही बड़ी देर तक जागते रहे। पति-पत्नी, दोनों ही मौन थे, किसी के मुँह से कोई बात नहीं निकल रही थी। एक बार एकाएक स्त्री की ओर मुँह फेर कर नीलाम्बर ने कोमल स्वर में कहा—आज तुम इतना क्रुद्ध क्यों हो उठीं विराज ?

विराज ने उत्तर दिया—क्यों तुमने ये सब बातें कहीं ?

नीलाम्बर ने कहा—मैंने तुम्हें कोई बुरी बात तो कही नहीं ?

विराज फिर भुँभुला उठी। अधीर भाव से वह बोली—अब भी तुम यही कह रहे हो कि मैंने कोई बुरी बात नहीं कही। जो कुछ तुमने कहा है वह बात बहुत बुरी है। बेहद बुरी है। इसीलिए तो मैंने सुन्दरी को—

विराज कहते-कहते रुक गई ।

क्षण भर तक मौन रह कर नीलाम्बर ने कहा—केवल इसी अपराध के कारण तुमने सुन्दरी को निकाल दिया ! विराज ‘हुँ’ कह कर चुप हो गई ।

अब विराज अपने आप ही बोल उठो—देखो, तुम मुझसे जिरह न करो । मैं दुधमुँही बच्ची नहीं हूँ, भला-बुरा समझती हूँ । सुन्दरी ने ऐसा अपराध ही किया था कि उसे निकाल दिया जाय । इसीलिए मैंने उसे निकाल दिया है । किम लिए निकाला और उसका वृत्तान्त क्या है ये सब बातें पुरुष होकर यदि तुम न सुनोगे तो इससे तुम्हारी कोई हानि न होगा ।

“नहीं, यह सब सुनने की इच्छा अब मुझे नहीं है ।” —यह कह कर नीलाम्बर ने एक लम्बी साँस ली । बाद को धीरे-धीरे करवट बदलकर वह लेट रहा ।

छोटा भाई पीताम्बर जब अलग हुआ था, तब दो-चार दिन के बाद ही मकान के बीच में लकड़ी के पतले-पतले खम्भे गाड़ कर और उनमें बाँस की फाँटियों का वेड़ा बाँध कर उसने अपना आधा हिस्सा अलग कर लिया था । इसके बिना पीताम्बर ने दक्षिण की ओर दरवाज़ा खोलकर उसके सामने एक बैठक बना लिया था और मकान को लोप-पोत कर साफ़-सुथरा कर लिया था ।

इस प्रकार वह अपना दिन आराम से बिताने लगा था । पीताम्बर पहले ही भाई से बहुत कम बोलता था । आजकल तो उसने उससे सब प्रकार के सम्बन्धों का विच्छेद ही कर लिया था । इधर विराज को समस्त दिन अकेले ही व्यतीत करना पड़ता था । जिस दिन उसने सुन्दरी को अलग किया है, उस दिन

से घर के सारे काम-काज उसे अपने हाथ से ही करने पड़ते थे । पहले उसने जिन कामों को नौकरानी किया करती थी, उन्हें लोक लज्जा के कारण वह दूसरों से छिपा कर ही कर लेने का उद्योग किया करती थी । इससे रात्रि में बड़ी देर तक उसे जागना पड़ता था ।

एक दिन की बात है । विराज रात्रि में घर के अनयमित कार्य कर रही थी । अकस्मात् मकान के उस हिस्से में बड़े की सौंस से कोमल कण्ठ की ध्वनि उसके कानों में पड़ी—दीदी, रात्रि तो बहुत अधिक बीत गई है ।

चौंक कर विराज ने मुख उठाया । जिसने पुकारा था, उसने फिर कोमल कण्ठ से ही कहा—दीदी, मैं हूँ मोहिनी ।

आश्चर्य में आकर विराज बोली—कौन ? छोटी बहू ? इतनी रात्रि में ?

“हाँ दादी, मैं ही हूँ । ज़रा नज़दीक आ जाओ ।” विराज बेड़े के समीप आ गई । तब छोटी बहू ने चुपके से कहा—क्यों दीदी, भाई जी सो रहे हैं ?

विराज ने कहा—हाँ ।

मोहिनी ने कहा—दीदी, तुमसे एक बात कहनी थी, परंतु कहने का साहस नहीं होता, इतना कह कर वह चुप हो गई ।

मोहिनी का कण्ठ-स्वर सुन कर ही विराज ने समझ लिया कि छोटी बहू रो रही है । इससे चिन्तित हो कर उसने पूछा—क्या हुआ है छोटी बहू ?

छोटी बहू तत्काल उत्तर नहीं दे सकी । सम्भवतः अञ्चल से उसने मुख पोछा और अपने आप को सँभालने लगी ।

उद्विग्न होकर विराज बोली—क्या हुआ छोटी बहू ?

अब छोटी बहू रुँधे हुए स्वर में कहने लगी—भाई जी के नाम नालिश हुई है। सुनने में आया है कि कल समन निकलेगा। क्या किया जायगा दीदी ?

विराज डरी तो, परन्तु उसने अपना वह भाव छिपा लिया और कहा—समन निकलेगा, तो इसके लिए भय क्या है छोटी बहू ?

‘भय नहीं है दीदी ?’

विराज ने कहा—भय क्या है ? परन्तु नालिश किमने की है ?

छोटी बहू ने कहा—भोला मुकुर्जी ने। विराज क्षण भर तक चकित भाव से खड़ी रही। बाद को वह बोली—कोई बात नहीं, मामला अब समझ में आ गया। इनके ऊपर मुकुर्जी महाराज के रुपये बाँकी हैं, शायद इसीलिए उन्होंने नालिश की होगी। परन्तु इसमें डरने की कोई बात नहीं है छोटी बहू ?

इसके बाद वे दोनों ही देवरानी-जेठानी मौन हो गईं। ज़रा देर के बाद छोटी बहू ने कहा—दीदी, मैंने किसी दिन भी तुमसे अधिक बातचीत नहीं की। बातचीत करने के योग्य भी मैं नहीं हूँ। किन्तु क्या तुम आज अपनी इस छोटी बहन की एक बात मानोगी ?

मोहिनी के कण्ठ-स्वर के कारण विराज आर्द्र हो उठी थी। अब और भी अधिक आर्द्र होकर वह बोली—क्यों न मानूँगी बहन ?

‘तो ज़रा हाथ फैलाओ।’

विराज के हाथ फैलाते ही एक छोटा-सा कोमल हाथ बेड़े की साँस से निकल आया। मोहिनी ने विराज के हाथ पर सोने की एक जंजीर रख दी।

आश्चर्य में आकर विराज बोली—क्यों छोटी बहू, इसे लेकर मैं क्या करूँ ?

छोटी बहू ने अपना कण्ठ-स्वर और भी धीमा करके कहा—इसे गिरौं रख कर या बेच कर उनका रुपया चुका दो दीदी ?

देवरानी से इस प्रकार की सहानुभूति की आशा विराज ने कभी नहीं की थी। इसलिए उसे स्वेच्छा से इतनी अधिक सहानुभूति प्रकट करते देख कर क्षण भर तक तो वह अवाक् रही, उससे कुछ कहा न गया। परन्तु यह कह कर कि 'दीदी, अब मैं चल रही हूँ' छोटी बहू जब वहाँ से हटने लगी तब विराज ने पुकार कर कहा—अभी जाओ नहीं छोटी बहू, ज़रा एक बात सुन लो।

छोटी बहू लौट आई। उसने कहा—क्या है दीदी ?

विराज ने बेड़े की साँस से वह जंजीर तुरन्त उसकी ओर फेंक दी और बोली—छिः यह सब न करना चाहिए।

छोटी बहू ने उसे उठा लिया। बाद को क्षुब्ध स्वर में उसने पूछा—क्यों न करना चाहिए ?

विराज ने कहा—यह बात भला जब पीताम्बर को मालूम होगा तब वे क्या कहेंगे ?

'किन्तु उन्हें तो यह कुछ मालूम ही न हो पावेगा।'

'मान लो कि आज उन्हें यह बात न मालूम होगी, किन्तु कल तो मालूम ही हो जायगी। उस समय क्या होगा ?

छोटी बहू ने कहा—वे यह बात कभी न जान पावेंगे दीदी !
गत वर्ष मृत्यु के समय मैं छिपा कर मुझे यह जंजीर दे गई है ।
इसे आज तक मैंने कभी गले में नहीं डाला, कभी निकाला
नहीं । मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ दीदी, इसे तुम ले लो ।

देवरानी की कातरतापूर्ण अनुनय सुनकर विराज के नेत्रों से
आँसू बहने लगे । निस्तब्ध भाव से वह मन ही मन विचार करने
लगी कि हम दोनों का एक घर में विवाह हुआ है, केवल इसी-
लिए हममें आत्मोद्यता है । अन्यथा हममें से एक का दूसरी से
कभी का कोई सम्पर्क नहीं है । तो भी हम दोनों में परस्पर इस
तरह का सहानुभूति का भाव है, हम दोनों ही एक दूसरी के लिए
बहुत कुछ आत्मत्याग कर सकती हैं । इसके विपरीत इसी घर में
दो पुरुष भी हैं । उन दोनों ही ने एक ही माता-पिता की गोद में
जन्म ग्रहण किया है । किन्तु उनमें से किसके हृदय में दूसरे के
प्रातः कितना सहानुभूति का भाव है ? अन्त में हाथ से आँखें
पोंछ कर रुद्ध कण्ठ से वह बोली—आज की बात मुझे मृत्यु के
समय तक स्मरण रहेगी बहन ! किन्तु इसे मैं ले न सकूँगी ।
इसके सिवा किसी भी स्त्री के लिए यह उचित नहीं है कि वह
स्वामी से छिपा कर कोई कार्य करे । छोटी बहू, इस तरह तुम्हारी
जंजीर ले लेने पर हम दोनों ही को पाप होगा ।

छोटी बहू ने कहा—तुम्हें सारी बातें मालूम नहीं हैं दीदी,
इसीलिए तुम ऐसा कह रही हो । परन्तु मेरा भी तो कुछ धर्म-
अधर्म है दीदी ! यमराज के यहाँ अपने पाप-पुण्य का लेखा-
समझाते समय मैं ही क्या उत्तर दूँगी ।

एक बार और आँखें पोंछ कर विराज ने अपने आप को

सँभाल लिया । वह बोली —छोटी बहू, मैंने सभी को पहचान लिया है, केवल तुम्हें अभी तक नहीं पहचान पाई थी । परन्तु मृत्युकाल में तुम्हें तो किसी प्रकार की जवाबदाही करनी नहीं पड़ेगी ! जो कुछ तुम्हारा वक्तव्य है, उसे अन्तर्यामी ने स्वयं अब तक लिख लिया है । जाओ, रात्रि हो गई है, अब सो जाओ बहन !

इतना कह कर छोटी बहू को इस बात का उत्तर देने के लिए समय दिये बिना ही विराज तेज़ी से पैर बढ़ाती हुई वहाँ से चली गई । परन्तु वह कमरे के भीतर भी नहीं प्रवेश कर सकी । अन्धकारमय बरामदे के एक कोने में अञ्चल बिछा कर वह लेट गई । नालिश या मुक़दमें की उमे कोई चिन्ता नहीं हुई । किन्तु इस स्वल्पभाषिणी और लुद्रकाय देवरानी की बातों पर विचार करते-करते उसके दोनों नेत्रों से भरने के जल की तरह आँसू टपकने लगे । आज उसके हृदय को सबसे अधिक व्यथा इस कारण होने लगी कि इतने दिनों तक इसे इतने समीप रख कर भी मैं पहचान नहीं पाई । इसे पहचानने के लिए मैंने कभी किसी प्रकार का प्रयत्न तक नहीं किया । परोक्ष में मैंने कभी इसकी निन्दा तो नहीं की है, किन्तु किसी दिन भी इसका पक्ष लेकर कभी कोई प्रशंसात्मक बात नहीं कही । बिजली का बहुत ही तेज़ उजाला जिस तरह मुहूर्त्त मात्र में अन्धकार को चीर डालता है ठीक उसी प्रकार आज छोटी बहू ने जेठानी के हृदय के अन्तस्तल तक को चीर कर प्रकाशमान कर डाला । सोचते-सोचते और रोते-रोते पता नहीं कब उसकी आँखें लग गई । एकाएक किसी के हाथों के स्पर्श से चौंक कर

वह उठ बैठी । उसने देखा तो मस्तक के पास नीलाम्बर बैठा था ।

नीलाम्बर ने संक्षेप में कहा—भीतर चलो, रात्रि प्रायः व्यतीत हो गई है ।

विराज अवाक् ही रही । स्वामी के शरीर के सहारे से भीतर आकर निर्जीव-मी लेट गई ।

(६)

एक वर्ष बीत गया । इस वर्ष खेती की पैदावार रुपये में दो आना भी नहा हुई । नीलाम्बर के जिन खेतों की पैदावार से उसकी गृहस्थी का प्रायः माल भर का खर्च चल जाया करता था, उनमें से अधिकांश खेत समीप के ही एक गाँव में रहने वाले मुकुर्जी महाराज ने खरीद लिये थे । उसका रहने का मकान तक रेहन हो गया था । वह रेहननामा छोटे भाई पीताम्बर ने चुम्के से आने नाम बदलवा लिया है, यह बात भी प्रकट हो चुकी थी । हल का एक बैल मर गया था, तालाब एकदम से सूख गया था । विराज जिस दिशा की ओर दृष्टि दौड़ाती थी, वही दिशा उसे सूनी मालूम पड़ती थी । शरीर के किसी अंश को यदि बड़ी देर तक बाँध रक्खा जाय तो उसमें एक ऐसी अव्यक्त मन्द-मन्द पीड़ा उत्पन्न हो आती है, जो असह्य हो उठती है और धीरे-धीरे सारा शरीर ही शक्तिहीन एवं शिथिल होता जाता है । उसी प्रकार विराज के सांसारिक संबंध में भी क्रमशः शिथिलता आने लगी । पहले वह कभी-कभी हँसा करती थी । बात हो बात में आने बुद्धि-कौशल से विनोद की सामग्री खोज कर वह दूसरों से हँसी भी कर लिया करता थी । परन्तु

आजकल घर में ऐसा कोई रह ही नहीं गया था, जिससे उसकी थोड़ी-बहुत बातचीत हो सकती। साथ ही जब कोई आ जाता और उसके घर का विशेष समाचार जानने की इच्छा प्रकट करता तो वह मन ही मन अप्रसन्न हुआ करती थी।

विराज स्वभाव से ही अभिमानिनी थी। पास-पड़ोस का कोई आदमी जब एक भी बात उसकी रुचि के प्रतिकूल कह देता, तो वह विद्रोह कर बैठती थी। गृहस्थी के किसी भी कार्य में उसे अब लेशमात्र भी उत्साह नहीं रह गया था, यह बात तो उसके कार्यों की ओर दृष्टिपात करने से ही मालूम हो जाती थी। आजकल उसके कमरे में पहले की तरह साफ़-सुथरी शय्या नहीं लगी रहा करती थी। खाट पर का बिछौना प्रायः मैला और अस्त-व्यस्त होता था। कपड़े टाँगने को जो खूँटियाँ थीं, उन पर कपड़े बाकायदा चुन कर और सफ़ाई के साथ नहीं टँगे होते थे। कमरे की चीज़ें भी गर्द से भरी हुई इधर-उधर बिखरी हुई पड़ी रहा करती थीं। कमरे में भाड़ू देने के बाद कूड़ा-करकट वह प्रायः कोने में ही लगा दिया करती थी। कदाचित् वह अपने शरीर में इतना भी बल नहीं खोज पाती थी, जिसकी सहायता से कमरे का कूड़ा-करकट उठा कर फेंक देती। इसी तरह दिन बीत रहे थे। इस बीच में नीलाम्बर ने छोटी बहन हरिमति को बुला ले आने के लिए दो बार प्रयत्न किया था। परन्तु उसकी ससुरालवालों ने उसे नहीं भेजा। पन्द्रह दिन हुए, उसने एक चिट्ठी भी लिखा। परन्तु हरिमति के ससुर ने उसका कोई उत्तर तक नहीं दिया। इधर विराज के सामने इस विषय की चर्चा तक करना नीलाम्बर के

लिए सम्भव नहीं था । उसके सम्बन्ध की कोई बात सुनने पर उसका शरीर आग की तरह जल उठता था । उसने पुटी का पालन-पोषण किया था, उसने माता के ही समान उसे प्यार किया था । किन्तु आजकल उसका सम्पर्क तक उसके लिए विष हो गया था !

आज सबेरे ही नीलाम्बर अपने गाँव के डाकघर में गया था । वहाँ से लौट कर आने पर उसने खिन्न भाव से घर के भीतर प्रवेश किया और कहा—पुटी के ससुर ने पत्र का उत्तर भी नहीं दिया । जान पड़ता है कि इस बार भी पूजा के अवसर पर बहन को एक बार देख न पाऊँगा ।

विराज उस समय किसी काम में लगी हुई थी । काम करते ही करते उसने एक बार मुख उठाया । उसकी कुछ कहने की इच्छा हुई, किन्तु जो बात वह कहना चाहती थी उसे कहे बिना ही वह उठ गई ।

उसी दिन दोपहर को भोजन करते-करते नीलाम्बर ने धीरे-धीरे कहा—तुम उसका नाम लेने पर भी जल उठती हो ! परन्तु इसका कोई कारण तो नहीं है । क्या उसने कोई अपराध किया है ?

विराज समीप ही बैठी थी । दृष्टि उठाकर वह बोली—यह किसने कहा कि मैं जल उठती हूँ ?

“कहेगा कौन ? मुझे स्वयं यह मालूम पड़ता है ।”

विराज क्षण भर तक स्वामी के मुँह की ओर ताकती रही । बाद को वह बोली—ऐसा मालूम पड़ना ही ठीक है । इतना कहने के बाद ही वह उठकर चली जा रही थी किन्तु

नीलाम्बर ने उसे पुकार कर कहा—अब्ला, आजकल तुम इस तरह की कैमे होती जा रही हो ! तुम तो अब एकदम से बदल ही गई हो ।

विराज घूम कर खड़ी हो गई । स्वामी की बात ध्यानपूर्वक सुन लेने के बाद वह बोली—बदलवानं से ही बदल जाना पड़ता है ।

इतना कह कर विराज रमोई-घर से निकलकर चली गई । उससे दो दिन बाद तीसरे पहर नीलाम्बर बाहर देवी जी के मन्दिर में अकेले ही बैठे-बैठे गुनगुना कर गा रहा था । विराज आकर कुछ क्षण तक नीरव भाव से उसके पीछे खड़ी रही । बाद को वह उसके सामने आ गई ।

मुख उठा कर नीलाम्बर ने कहा—क्या है ?

विराज तीक्ष्ण दृष्टि से ताकती रह गई । उसने कोई उत्तर नहीं दिया ।

नीलाम्बर के मुख नीचा करते ही विराज तीक्ष्ण स्वर में बोली—ज़रा एक बार फिर तो मुख ऊपर करो ।

नीलाम्बर ने न तो मुख उठाया और न उसने पत्नी की बात का कोई उत्तर दिया । वह मौन भाव से ही बैठा रहा ।

विराज ने पहले की ही तरह कठोर भाव से कहा—देखो, आँखें किस तरह लाल-लाल हो उठी हैं ! फिर नशा करना आरम्भ कर दिया तुमने ?

नीलाम्बर कुछ बोला नहीं ! भय के मारे नीचे की ओर ताकते-ताकते काठ की पुतली की तरह वह बैठा रहा । एक तो चिरकाल से ही वह विराज से डरता आया था, तिस पर आज-

कल वह इस प्रकार गरम बारूद की एक ढेर-सी बनी रहती थी कि कब किस प्रकार भभक उठेगा, इसका अनुमान तक करना कठिन था ।

कुछ क्षण तक स्थिर भाव से खड़ी रहने के बाद विराज ने भी कहा—यही अच्छा है । भौंग छानकर और दम लगाकर बमभोला बने बैठे रहने का यही तो समय है ।

इतना कह कर विराज घर के भीतर चली गई । वह दिन बीत गया । उसके दूसरे दिन नीलाम्बर से न रहा गया । समस्त लज्जा और मङ्गोच का परित्याग करके उसने पीताम्बर को बाहर के कमरे में बुलाया और उससे उसने कहा—पुटी के ससुर ने तो मेरे पत्र का उत्तर तक नहीं दिया । ज़रा तुम्हीं एक बार प्रयत्न करके देख लो । यदि किसी प्रकार पूजा के अवसर पर दो दिन के लिए भी बहन को ले आ सको, तो बड़ा अच्छा हो ।

बड़े भाई के मुँह की ओर ताकते हुए पीताम्बर ने कहा—जब तक तुम वर्तमान हो, तब तक भना मैं क्या प्रयत्न करूँ ?

पीताम्बर की इस प्रकार की शठतापूर्ण बात सुन कर नीलाम्बर भीतर हो भीतर क्रुद्ध हो उठा । परन्तु अपने उस क्रोध के भाव को यथासम्भव दबा कर उसने कहा—यह कोई बात नहीं है । पुटी ज़िम तरह मेरी बहन है, उसी तरह तुम्हारी भी है । यही समझ लो कि मैं मर गया हूँ । अब तुम अकेले ही हो ।

पीताम्बर ने कहा—तुम्हारी तरह मैं भी वह बात अपने मन में नहीं आने दे सकता जो कि सब नहीं है । इसके सिव

उन्होंने जब तुम्हारे पत्र का कोई उत्तर नहीं दिया तब वे भला मेरे ही पत्र का उत्तर क्यों देने लगे ?

नीलाम्बर ने छोटे भाई की इस बात को भी सहन कर लिया । उसने कहा—तो क्या मैं अपने मन में उन्हीं बातों को स्थान दिया करता हूँ, जो सच नहीं होती ? अच्छा, यही सही । मुझे इस सम्बन्ध में तुमसे विवाद नहीं करना है । परन्तु उन्होंने मेरे पत्र का उत्तर इसलिए नहीं दिया है कि जिन शर्तों पर मैंने उसके यहाँ पुटी का विवाह किया है, उन सब को पूरी नहीं कर सका । उनके सम्बन्ध में बातचीत करने के लिए, अथवा उन्हें पूरी करने में सहायता देने के लिए, मैंने तुम्हें नहीं बुलाया है । मैं तुम्हें जो कुछ करने को कह रहा हूँ वह तुम कर सकोगे या नहीं, तुम यही मुझसे बतलाओ ।

मस्तक हिला कर पीताम्बर ने कहा—नहीं । क्या तुमने विवाह करने से पहले भी मुझसे इस सम्बन्ध में कुछ पूछा था ?

“यदि मैंने पूछा ही होता तो तुम क्या करते ?”

पीताम्बर ने कहा—अच्छी ही सलाह देता है ।

नीलाम्बर की खोपड़ी के भीतर आग जलने लगी । उसके दोनों ही होठ काँपने लगे । ता भी अपने आपको किसी प्रकार संभाल कर उसने कहा—तो इस संबंध में तुम कुछ कर न सकोगे ?

पीताम्बर ने कहा—नहीं । इसके सिवा जैसे वे पुटी के ससुर हैं, वैसे ही मेरे भी ससुर हैं । इससे वे मेरे बड़े हैं । ऐसी अवस्था में पुटी को भेजने की जब उनकी इच्छा नहीं है, तब उनकी इच्छा के प्रतिकूल मैं कुछ कह नहीं सकता हूँ । कोई

ऐसा कार्य करने के लिए, जिसे करने की उनकी इच्छा नहीं है, गुरुजनों के ऊपर दबाव डालने का मेरा स्वभाव नहीं है।

पीताम्बर की ये बातें सुनकर एक बार नीलाम्बर के मन में आया—उछल कर ऐसे जोर से लात मारूँ कि इसका मुँह भुत्ता हो जाय। किन्तु उसने अपने आपको सँभाल लिया। अन्त में नीलाम्बर उठ कर खड़ा हो गया। उसने कहा—जा, हट जा मेरे सामने से, तेरे किये कुछ न होगा।

पीताम्बर भी क्रुद्ध हो उठा। उसने कहा—व्यर्थ मैं इतना गरम क्यों पड़ रहे हो मैया ? यदि मैं यहाँ से न हटूँगा तो क्या तुम ज़बरदस्ती मुझे हटा दोगे ?

दरवाज़े की ओर हाथ फैलाकर नीलाम्बर ने कहा—यदि तेरी इच्छा है कि बुढ़ाई में मार खाकर प्राण न देने पड़े तो तू हट जा मेरे सामने से।

इस बात के उत्तर में भी पीताम्बर कुछ कहने जा रहा था, किन्तु उसे रोकते हुए नीलाम्बर ने कहा—खबरदार, अब एक भी बात मुँह से न निकलने पावे। तुम चले जा प्रो यहाँ से।

गँवार नीलाम्बर के शरीर का बल प्रसिद्ध था। इससे डर के मारे पीताम्बर को फिर कोई बात मुँह से निकालने का साहस न हुआ। धीरे-धीरे कमरे से निकल कर वह चला गया।

विराज ने जब यह देखा कि दोनों भाइयों में बरुभर होने लगी है, इससे भगड़ा हो जाने की आशङ्का है, तब वह भीतर से निकल आई और स्वामी का हाथ पकड़ कर उसे भीतर खींच ले गई। बाद को उसने कहा—छिः, सब कुछ जान-बूझकर भी

तुम भाई के साथ इस प्रकार निरर्थक हाथ-हत्या क्यों करने लगे हो ?

नीलाम्बर ने उद्धत भाव से कहा—जानता हूँ, क्या इसी-लिए हाथ-पैर सिकोड़े बैठा रहूँ ? मैं सब-कुछ सहन कर लेता हूँ विराज, किन्तु पाखण्ड मुझसे नहीं सह जाता ।

विराज ने कहा—किन्तु तुम अकेले तो हो नहीं ? यदि आज हाथ पकड़ कर ये इस घर से निकाल दें तो कल कहाँ खड़े होगे, ज़रा बताओ तो ? क्या तुमने कभी एक बार भी इस विषय पर विचार किया है ?

नीलाम्बर ने कहा—नहीं । इस विषय पर जिन्हें विचार करना है, वही विचार करेंगे, मैं व्यर्थ मैं इस सम्बन्ध में सोच-विचार करके अपने मन को दुःखी क्यों करूँ ।

विराज ने उत्तर दिया—तुम्हारा यह कहना ठीक है । जिसके लिए संसार के समस्त प्रकार के कार्यों में से केवल ढोलक बजाना और महाभारत पढ़ना ही एकमात्र कार्य है, उसके लिए किसी प्रकार का सोच-विचार करना निरर्थक ही है ।

विराज ने ये शब्द मधुर स्वर में अपने मुख से नहीं निकाले थे । उसकी इस बात ने नीलाम्बर के कानों में अमृत की वर्षा भी नहीं की थी । तो भी स्वाभाविक स्वर में ही उसने कहा—निस्तन्देह मैं इन्हीं कामों को सबसे अधिक महत्त्व का काम समझता हूँ । इसके बिना क्या निरन्तर चिन्ता करते रहने से ही ललाट से भाग्य की रेखा मिट जायगी ?

इतना कह कर नीलाम्बर ने एक बार ललाट पर हाथ रखखा और कहा—ज़रा साचकर देखो तो विराज, यहीं पर विधाता

ने पहले से लिख दिया था, इस कारण कितने ही राजाओं और महाराजाओं को वृत्त के नीचे रहकर दिन बिताने पड़े हैं; फिर मैं तो एक बहुत ही तुच्छ व्यक्ति हूँ ।

विराज क्रोध के मारे भीतर ही भीतर जली जा रही थी । उसने कहा—ये सब बातें मुँह से निकाल देना जितना सरल है, समय आने पर इनके अनुसार कार्य करना उतना सरल नहीं है । इसके सिवा तुम चाहे भले ही वृत्त के नीचे रह कर निर्वाह कर लो, मुझसे तो न रहा जायगा ! मैं स्त्री ठहरी । मुझे लाज शर्म का ख्याल रखना ही है । चाहे खुशामद करने से हो सके, चाहे सेवावृत्ति के ही द्वारा हो सके, मेरे लिए रहने का ज़रा-सा ठिकाना होना ही चाहिए । यदि तुमसे छोटे भाई की खुशामद नहीं होती तो कोई बात नहीं है । परन्तु कम से कम इतना तो तुम्हें अपने आपको सँभाल ही रखना चाहिए कि उनसे हाथा-पाई करने का अवसर न आवे । इस तरह की भूल करके तुम सारा मामला चौपट न करो ।

इतनी बातें मुँह से निकालने के बाद विराज नेत्रों का जल रोक कर तेज़ी से पैर बढ़ाती हुई कमरे से निकल गई ।

इससे पहले कई बार ऐसा अवसर आया था, जब नीलाम्बर तथा विराज में कहा-सुनी हुई थी । उन स्वामी-स्त्री में बहुत से विषयों में कई बार विवाद हुआ था । नीलाम्बर को वे सभी घटनायें भूली नहीं थीं । परन्तु आज जो कुछ हो गया, वह विवाद या कलह नहीं था । विराज की आज की मूर्ति नीलाम्बर के लिए बिलकुल नई थी । पत्नी की इस प्रकार की मूर्ति उसने

और कभी नहीं देखी थी । इससे हक्का-बक्का होकर वह खड़ा रह गया ।

कई मुहूर्त्त के बाद ही फिर कमरे में प्रवेश करके विराज ने कहा—इस तरह हक्का-बक्का होकर खड़े क्यों हो ! दोपहर हो चला । जाओ, स्नान तथा सन्ध्योपासन आदि से निवृत्त हो आओ और भोजन कर लो । जितने दिनों तक आहार मिलता जाय उतने ही दिनों तक अच्छा है ।

अपनी इन बातों के द्वारा स्वामी के हृदय में फिर एक बाण मार कर विराज चली गई । कमरे की दीवार पर राधा-कृष्ण का एक चित्र टँगा हुआ था । उस चित्र का ओर ताकते-ताकते विराज एकाएक रो पड़ी । परन्तु इस भय के कारण कि बाद को कहीं किसी को मेरे इस तरह रोने का हाल मालूम न हो जाय, आँखें पोंछ कर वह तुरन्त ही कमरे से निकल गई ।

और विराज ! विराज का वह दिन प्रायः रोते ही रोते व्यतीत हुआ । रह-रह कर उसकी आँखों से आँसू गिरने ही लगते । जिन्हें लेशमात्र भी क्रोध होते देख कर वह व्याकुल हो जाया करती थी, अपने उन्हीं स्वामी को जिस समय उसने अपने मुँह से इतनी कड़ी बात कह डाली, उस समय से उसके दुःख और आत्म-ग्लानि की सीमा नहीं रह गई थी । समस्त दिन उसने होठों से जल तक नहीं लगाया । रोते-रोते इस कमरे से उस कमरे में और उस कमरे से इस कमरे में वह बेकार ही घूमती रही । अन्त में जब सँभ हुई, तब तुलसी के वृक्ष के नीचे दीपक जलाकर गले में अञ्जल लपेटे हुए प्रणाम करने के लिए जब वह भूमि पर लोटी तब फफक-फफक कर एकदम से रो पड़ी ।

घर में उस समय कोई मनुष्य नहीं था । वहाँ पर पूर्ण निस्तब्धता थी । नीलाम्बर घर में नहीं था । दोपहर को एक बार वह थाली के पास बैठा था और बैठते ही उठ गया था । उसके बाद जब वह घर से निकला, तब से अभी तक लौट कर नहीं आ सका ।

आज विराज की बुद्धि जरा भी काम नहां दे रही थी । वह क्या करे, कहाँ जाय और किमसे क्या कहे, उसे यह कुछ सूझ ही नहीं पड़ता था । अन्त में और कोई उपाय न देख कर वह वहीं अँधेरे आँगन में पेट के बल लोट गई और फफक-फफक कर रोने लगी । रोते-रोते वह बार-बार यही कहने लगी— हे अन्तर्यामी देवता, एक बार मुख उठा कर देखो । हे नारायण, जो व्यक्ति कोई दोष, कोई पाप करना नहीं जानता, उसे अब और क्लेश न दो, मुझसे अब न महा जायगा ।

उस समय रात्रि में नौ बजे थे । नीलाम्बर लौट कर घर आया । वह चुपचाप चारपाई पर लेट गया । स्वामी के आने के बाद ही विराज ने भी कमरे में प्रवेश किया । वह पायताने पर बैठ गई । नीलाम्बर ने उसकी आर नहीं देखा । उसने उससे कुछ कहा भी नहीं ।

ज़रा देर के बाद विराज ने स्वामी के चरण पर अग्रना एक हाथ रखवा । परन्तु नीलाम्बर ने तुरन्त ही अपना पैर सिकोड़ लिया । और भी पाँच मिनट का समय निस्तब्ध भाव से ही व्यतीत हुआ । विराज का जो अभिमान लुप्त हो गया था, वह धीरे-धीरे फिर मजग होने लगा । तो भी मृदु-स्वर में वह बोली— चलो, खालो ।

नीलाम्बर चुप ही रहा । विराज बोली—समस्त दिन तुमने

जो खाया नहो, वह किसके ऊपर क्रोध करके नहीं खाया है ।
ज़रा बताओ तो ?

इतने पर भी नीलाम्बर ने कोई उत्तर नहीं दिया ।

विराज ने कहा—बोलते क्यों नहीं ? कुछ मालूम तो पड़े ?
नीलाम्बर ने उदास भाव से कहा—मालूम पड़ने से
क्या होगा ?

विराज ने कहा—तो भी मालूम होना चाहिए ।

नीलाम्बर अब अकस्मात् उठ कर बैठ गया । उसने अपने
दोनों ही नेत्र विराज के मुख की ओर सुतीक्ष्ण शूल की तरह
लगाये । बाद को वह बोला—तेरा मैं गुरुजन हूँ विराज,
खिलौना नहीं हूँ ।

स्वामी के नेत्रों की दृष्टि तथा कण्ठ के स्वर के कारण
विराज भयभीत हो गई । वह चकित होकर निस्तब्ध भाव से
ताकती ही रह गई । स्वामी का इस तरह का आर्त्त, इस तरह
का गम्भीर कण्ठ-स्वर उसने और कभी नहीं सुना था ।

(७)

मगरागंज में पीतल के कूँजे के कई कारखाने थे ।
सप्तग्राम में जितनी भी नीच जाति की स्त्रियाँ थीं, वे सब मिट्टी
के साँचे बना कर ले जाती और वहीं बेच आया करतीं । विराज
ने जब देखा कि घर का खर्च चलने का अब कोई उपाय नहीं
रह गया है और पैसे के अभाव के कारण हम लोगों को बड़ा
ही क्लेश हो रहा है, तब उसने वैसी ही एक स्त्री को बुला कर
साँचा बनाना सीख लिया । विराज की बुद्धि बहुत ही तीक्ष्ण
थी । साथ ही उसमें कार्य-कुशलता भी असाधारण थी । इससे

साँचा बनाना उसने दो ही दिनों में साँख लिया और वह दूसरों की अपेक्षा कहीं अधिक उत्तम माल तैयार करने लगी । व्यापारी लोग आकर नक़्द मूल्य पर उसके बनाए हुए साँचे खरीद ले जाया करते थे । इस प्रकार विराज प्रतिदिन ही आठ-दस आने पैसे कमा लिया करती थी, किन्तु लज्जा के मारे वह स्वामी को मालूम नहीं होने देती थी । रात्रि जब बहुत अधिक व्यतीत हो जाती तब स्वामी के सो जाने पर वह चुन्चाप चार-पाई पर से उठ जाया करती और साँचे बनाने में जुट जाती । आज रात्रि में भी वह उसी प्रकार उठ कर साँचे बनाने के लिए आई थी । आज उसका शरीर बहुत ही क्लान्त हो गया था, इससे साँचे बनाते-बनाते उसे निद्रा आ गई । संयोगवश नीलाम्बर की भी निद्रा-भंग हो गई । शय्या पर जब उसने किसी को भी नहीं देखा तब वह उठ कर बाहर आया ।

विराज भूमि पर पड़े-पड़े सो रही थी । उसके दोनों हाथों में गीली मिट्टी लगी हुई थी, साथ ही उसके आस-पास कब्जे बनाने के साँचे पड़े हुए थे । ओस की बूँदों से उसका शरीर भीग गया था ।

आज तीन दिनों से स्वामी-स्त्री में कोई बातचीत नहीं हुई थी । परन्तु स्त्री की यह अवस्था देख कर नीलाम्बर से अब न रहा गया । गरम-गरम आँसुओं से उसके दोनों नेत्र भर गये । वह तुरन्त ही बैठ गया और भूमि पर पड़े हुए स्त्री के निद्रित मस्तक को सावधानी के साथ अपनी गोद में ले लिया । विराज को यह मालूम नहीं हो सका । वह केवल एक बार ज़रा-सा हिली डुली, फिर अपने पैरों को और भी फैला कर

अच्छी तरह लेट गई । इधर नीलाम्बर ने बायें हाथ से अपनी आँखें पोंछीं और दाहिने हाथ से समीप ही टिमटिमा कर जलते हुए दीपक की बत्ती और बढ़ा दी । अब वह एक दृष्टि से पत्नी के मुख की ओर ताकने लगा—यह क्या हो गया है ! नहीं, इतने दिनों तक तो मेरी दृष्टि में यह बात कभी नहीं आई ! विराज के नेत्रों के कोने में इस तरह की कालिमा पड़ गई है ! भौहों के ऊपर, उसके सुन्दर और सुडौल ललाट के ऊपर, दुश्चिन्ता की रेखायें इस तरह बहुत ही स्पष्ट रूप से उदित हो आई हैं ! पत्नी की यह अवस्था देख कर नीलाम्बर का अन्त-स्तन न जाने कैसी एक अव्यक्त एवं अपरिसीम वेदना से उद्वेलित होने लगा । अब उसमें इतना बल नहीं रह गया कि वह अपने आपको पूर्णरूप से सँभाल रखे । इससे आँसू की एक बड़ी सी बूँद उसके नेत्र से चू कर विराज के मुँदे हुए नेत्र की पलक पर टप से गिर पड़ी । इतने में विराज ने भी आँखें खोल दीं । वह कुछ क्षण तक स्वामी की ओर नीरव भाव से ताकती रही । बाद का दोनों ही बाहें फैलाकर उसने उसके शरीर को आवेष्टित कर लिया और उसकी गोद में मुँह छिपाये हुए कर-वट बदल कर लेट गई । नीलाम्बर वैसे ही बैठे-बैठे रोने लगा ।

इसी प्रकार बहुत-सा समय व्यतीत हो गया । स्वामी-स्त्री, दोनों में से किसी के भी मुख से कोई शब्द नहीं निकला । अन्त में जब क्रमशः रात्रि व्यतीत हो चली और पूर्व का आकाश स्वच्छ होने लगा, तब नीलाम्बर ने अपने आपको सँभाला । स्त्री के मस्तक पर हाथ रख कर स्नेहपूर्वक उसने कहा—ओस में अब मत पड़ी रहो विराज, भीतर चलो ।

“चलो ।”

विराज उठ पड़ी । स्वामी का हाथ पकड़े हुए वह भीतर आकर लेटी ।

सबेरा होने पर नीलाम्बर ने कहा—विराज, जा तू अपने मामा के यहाँ एक बार घूम आ । मैं भी कुछ दिनों के लिए कलकत्ता जाने का विचार कर रहा हूँ ।

“कलकत्ता जाकर क्या करोगे ?”

नीलाम्बर ने कहा—कलकत्ता में बहुत तरह के रोज़गार हैं ? मैं भी वहाँ किसी न किसी रोज़गार में लग जाऊँगा । इसलिए तुम मेरा कहना मान लो विराज, कुछ महीनों के लिए अपने मामा के यहाँ चली जाओ ।

विराज ने पूछा—मुझे तुम कितने दिनों में वहाँ से बुला ले आओगे ।

नीलाम्बर ने कहा—छः महीनों में मैं तुम्हें अवश्य बुला ले आऊँगा, इस बात का मैं तुमसे वादा करता हूँ ।

“अच्छा” कह कर विराज तैयार हो गई ।

चार-पाँच दिनों के बाद बैलगाड़ी आई । विराज के मामा का घर सप्तग्राम से आठ दस कोस की दूरी पर था । वहाँ जाने के लिए केवल बैलगाड़ी का ही सहारा लिया जा सकता था । इस प्रकार सवारी तो आ गई, किन्तु विराज के रंग-ढंग से यह बात ज़रा भी न मालूम हो सकी कि वह यात्रा के लिए तैयार है ।

नीलाम्बर व्यग्रता का भाव प्रकट करने लगा । वह विराज

से बार-बार कहने लगा कि विलम्ब करना ठीक नहीं है, अब तुरन्त ही सामान बाँध कर तैयार हो जाओ ।

विराज नियमित रूप से अपने कार्य में संलग्न थी । वह बोली—आज तो मैं नहीं जाऊँगी । मेरी तबीअत कुछ खराब मालूम पड़ रही है ।

नीलाम्बर ने चकित भाव से कहा—क्या कहा तुने ? तबीअत खराब है ?

विराज ने कहा—हाँ, तबीअत खराब है । आज मेरे शरीर में बड़े जोर की पीड़ा हो रही है ।

यह कह कर विराज बगल में पीतल का घड़ा दबाये हुए जल भरने के लिए नदी-तट की ओर चली गई ।

उस दिन बैलगाड़ी लौट गई । रात्रि में बहुत कुछ कहने-सुनने, बहुत कुछ समझाने-बुझाने पर विराज इस बात पर तैयार हो गई कि वह दो दिनों के बाद मामा के यहाँ जायगी । इसमें तीसरे दिन फिर बैलगाड़ी आकर उसके द्वार पर खड़ी हो गई ।

नीलाम्बर ने पत्नी को यात्रा के लिए आवश्यक आयोजन करने को कहा । परन्तु पति के मुख से यह बात सुनते ही उसने यात्रा करना अस्वीकार कर दिया । वह बोली—नहीं, मैं वहाँ कभी न जाऊँगी ।

और भी आश्चर्य में आकर नीलाम्बर ने कहा—क्यों, तू जायगी क्यों नहीं ?

विराज रो पड़ी । रोते-रोते उसने कहा—नहीं, मैं न

जाऊँगी । मेरे पास गहने कहाँ हैं ? मेरे पास कपड़े कहाँ हैं ? मैं एक निर्धन की तरह, एक दुखिया की तरह कदापि न जाऊँगी ।

क्रोध में आकर नीलाम्बर ने कहा—यह बात सच है कि आज तेरे पास गहने नहीं हैं । परन्तु जब थे तब तो किसी दिन दृष्टि फेर कर तूने उनकी ओर देखा तक नहीं !

विराज चुन्चाप अञ्चल से आँखें पोंछने लगी । नीलाम्बर ने फिर कहा—मैं यह समझ रहा हूँ कि तू इस तरह के बहाने क्यों कर रही है । मन ही मन मुझे सन्देह हो ही रहा था । परन्तु उस समय मेरे मन में यह बात आ रही थी कि इतने दुःख-क्लेश सहन करने के कारण सम्भवतः तेरी बुद्धि अब ठिकाने पर आ गई होगी । परन्तु अब ऐसा मालूम पड़ रहा है कि यह कुछ नहीं हुआ । अच्छी बात है ! तू भी सुख-सुख कर प्राण दे और मैं भी अपने प्राणों से हाथ धो डालूँ । यह कह कर नीलाम्बर ने बैलगाड़ी लौटा दी ।

दोहर को नीलाम्बर कमरे के भीतर सो रहा था । पीताम्बर अपने काम पर गया हुआ था । छोटी बहू ने बेड़े की साँस से पुकार कर धीमे स्वर में कहा—दोदो, जमा करना । तुम्हें समझाने की योग्यता मुझमें नहीं है । परन्तु दो दिनों के लिए चली ही क्यों न गईं ?

विराज मौन रही ।

छोटी बहू ने कहा—भाई जी को घर के भीतर ही बन्द न कर रखो दोदो ! ये सङ्कट के दिन हैं । एक बार जी कड़ा करो । भगवान् दो दिन के बाद दृष्टि उठा कर ताकेंगे ही ।

विराज ने धीरे-धीरे कहा—मैंने तो जी कड़ा ही कर रक्खा है छोटी बहू !

छोटी बहू ने जरा-सा ज़ोर देकर कहा—तो तुम चली जाओ दीदी, उन्हें एक पुरुष की तरह चार पैसे उपार्जित करने दो । मुझे विश्वास है कि थोड़े ही दिनों में भगवान् तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हो जायँगे ।

विराज ने एक बार मुख ऊपर किया । वह कुछ कहने को उद्यत हुई, किन्तु बाद को उसने फिर मुख नीचा कर लिया और स्थिर होकर वह खड़ी रही ।

छोटी बहू ने कहा—जा सकोगी न ? अब विराज से उत्तर दिये बिना नहीं रहा गया । मस्तक हिला कर उसने कहा—नहीं । निद्रा भंग होने पर जब मैं शय्या का परित्याग करती हूँ, तब मेरे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि मैं एक बार उनका मुख देख लूँ । उन्हें देखे बिना मैं एक दिन भी नहीं बिता सकती हूँ । इसलिए हे छोटी बहू, जो कार्य करना मेरे लिए सम्भव नहीं है, उसे करने को मुझसे मत कहो ।

इतना कह कर विराज चली जा रही थी । परन्तु उसके पीछे की ओर पैर बढ़ाते ही रुआसी होकर छोटी बहू ने उसे पुकार कर कहा—जाना मत दीदी, तुम्हें कुछ दिनों के लिए यहाँ से हट ही जाना होगा । तुम जब तक जाओगी नहीं, तब तक मैं किसी प्रकार भी शान्त न होऊँगी ।

विराज लौटकर खड़ी हो गई । मुहूर्त्त भर स्थिर भाव से खड़ी रहने के बाद उसने कहा—ओह, मामला मेरी समझ में आ गया । शायद सुन्दरी आई थी !

मस्तक हिला कर छोटी बहू ने कहा—हाँ, आई थी ।

“क्या इसीलिए तुम मुझसे यहाँ से हट जाने को कह रही हो ?”

“हाँ दोदी, इसीलिए कह रही हूँ । तुम चली जाओ यहाँ से ।”

विराज फिर क्षण भर मौन भाव से खड़ी रही । बाद को वह बोली—एक कुत्ते के भय से भला मैं घर छोड़कर चली जाऊँगी ?

छोटी बहू ने कहा—कुत्ता जय पागल हो जाता है, तब तो उससे डरना हा पड़ता है दीदी ! इसके मिवा भय एकमात्र तुम्हारे ही लिए नहीं है । यदि तुम इस सम्बन्ध में ज़रा-सा विचार करो तो तुम्हें मालूम हो जायगा कि इसी कारण और भी कितने प्रकार के अनिष्ट हो सकते हैं ।

विराज और भी कुछ क्षण तक चुप रही । बाद को उद्धत भाव से मुँह उठाकर वह बोली—नहीं, मैं किसी प्रकार भी यहाँ से पैर न उठाऊँगी ।

इतना कहने के बाद विराज ने उत्तर देने के लिए छोटी बहू को ज़रा-सा भी समय नहीं दिया, तेज़ी से पैर बढ़ाती हुई वह चली गई । परन्तु उसे कुछ भय सा मालूम पड़ने लगा । जिस घाट पर उसके घर के लोग जल भरने के लिए जाया करते थे, उसके ठीक सामने, नदी के उस पार एक बहुत अच्छा-सा घाट बनाया जा रहा था । साथ ही नदी में जल का अभाव होने पर भी मछलियाँ पकड़ने के लिए मचान बनाया जा रहा था । विराज ने मन ही मन यह अनुभव कर लिया कि इन समस्त आयोजनों का उद्देश्य क्या है ?

एक दिन स्नान करके लौटने के बाद नीलाम्बर ने भी पूछा—उम नार घाट किन लोगों ने बँधवाया है विराज ?

एकाएक क्रुद्ध होकर विराज ने उत्तर दिया—मुझे क्या मालूम ! यह कहकर वह उतावली के साथ चली गई ।

पत्नी का भाव देखकर नीलाम्बर अवाक् हो गया । परन्तु विराज ने उमी दिन से समय-अमय का विचार किये बिना जल भरने के लिए घाट पर जाना बिनकुल ही वन्द कर दिया । नदी-तट पर अब वह या तो बड़े तड़के जाती थी या कुछ रात्रि व्यतीत हो जाने के बाद जाया करती थी । अन्यथा लाख काम रुके होने पर भी वह उम और पैर नहीं रखती थी । परन्तु भीतर ही भीतर उमका अन्तःकरण वृणा, लज्जा और क्राध में लबालब भर उठा था और अपने आपको सँभाल रखने में वह बड़ी ही कठिनाई का अनुभव कर रही थी । इधर इस अत्याचार और अकथनीय अशिष्टता के विरुद्ध माहम करके वह स्वामी के सामने भी नहीं मुँह खोल पाती थी ।

चार दिन बाद की ही बात है । एक दिन घाट पर से स्नान करके लौटने पर नीलाम्बर ने मुस्करा कर कहा—क्यों विराज ! क्या तुमने नये ज़मींदार का ठाट-बाट देखा है ।

विराज स्वामी का मनोभाव ताड़ गई । अन्यमनस्क भाव से उसने कहा—देख ही रही हूँ ।

मुस्कराते-मुस्कराते नीलाम्बर ने फिर कहा—मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि यह आदमी पागल है । आजकल नदी में इतना भी जल नहीं है कि इसमें छोटे आकार की भी दो-चार

मछलियाँ रह सकें। परन्तु वह सबेरे से ही एक डोंगी में बड़ा-सा पाल बाँधे हुए बैठा है।

विराज चुप रही। ज़मींदार की खिलियाँ उड़ाने में वह स्वामी के साथ योगदान नहीं कर सकी।

नीलाम्बर कहने लगा—परन्तु उसका यह ढंग तो अच्छा नहीं है। जो घाट एक भले आदमी के घर की खिड़की के ठीक सामने है, उसके समीप यदि कोई व्यक्ति समस्त दिन अड्डा जमाये रहे तो घर के स्त्री-बच्चों का आना-जाना कैसे हो सके ? अच्छा, तुम लोगों को तो अवश्य ही बड़ी असुविधा होती होगी। ठीक है न ?

विराज ने कहा—मान लो कि होती ही है। परन्तु इसमें अपना बस क्या ?

नीलाम्बर को कुछ उत्तेजना-सी आ गई। वह बोला—बस क्यों नहीं है ? नदी भर में क्या और कोई स्थान नहीं है, जहाँ वह अपनी डोंगी लिये हुए निरन्तर पागलपन करता रहे ? नहीं, नहीं, कल से ऐसा न होने पावेगा। सबेरे ही मैं उसके डेरे पर जाकर कह आऊँगा कि यदि आपको डोंगी लेकर बैठे रहने का ही शौक है तो किसी दूसरे स्थान पर जाकर अड्डा जमाने की कृपा कीजिए। मेरे घर के सामने आप इस तरह समस्त दिन न जमे रहने पावेंगे।

स्वामी की इस बात ने विराज के मन में भय का संचार कर दिया। घबराहट के साथ वह बोली—नहीं, नहीं, वहाँ जाकर यह सब कहने की तुम्हें कोई आवश्यकता नहीं है। नदी केवल हम लोगों की ही नहीं है कि तुम जाकर उन्हें रोक आओगे।

पत्नी की इस बात ने नीलाम्बर को ज़रा कुछ विस्मित-सा कर दिया। वह बोला—तू यह क्या कहती है विराज ? नदी हमारी नहीं है तो न सही। तो क्या इसीलिए उचित-अनुचित का विचार किये बिना जिसके मन में जो आवेगा, वह वही कर डालेगा। मैं कल ही जाकर कइ आऊँगा और यदि वह न सुनेगा तो मचान वगैरह अपने हाथ से ताड़कर फेंक दूँगा। बाद को उसके जी में जो आवेगा, वह करेगा।

स्वामी की यह बात सुन कर विराज दंग रह गई। बाद को धीरे-धीरे उसने कहा—तो क्या तुम ज़मींदार के साथ झगड़ा करने जाओगे ?

नीलाम्बर ने कहा—क्यों न जाऊँगा ? क्या वह बड़ा आदमी होने के ही कारण इच्छानुसार अत्याचार करता रहेगा और हम उसके अत्याचारों को सहन करते रहेंगे ?

“क्या तुम यह प्रमाणित कर सकते हो कि वह अत्याचार कर रहा है ?”

नीलाम्बर ने कुछ रोषमय स्वर में कहा—इलाकों के पीछे परेशान होने वाला व्यक्ति मैं नहीं हूँ। मैं साफ़ देख रहा हूँ कि वह अन्याय कर रहा है। परन्तु तुम कहती हो कि क्या उसका अन्याय प्रमाणित किया जा सकता है ? प्रमाणित कर सकता हूँ या नहीं, यह तो मेरे ममझने की बात है।

विराज मुहूर्त भर स्थिर भाव से स्वामी को और ताकती रही। बाद को वह बोली—देखो, दिमाग़ ज़रा ठंडा कर लो। जिसे दिन में दो बार भोजन नहीं मिलता, उसके मुख से इस तरह की बात सुनने पर लोग शरीर पर थूक देंगे।

“कैसे !”

“कैसे क्या ? तुम्हारे बस की बात है ज़मींदार के लड़के के साथ झगड़ा करना ?”

बात यह इतने तीखे ढंग से विराज के मुख से निकल आई कि नीलाम्बर इसे सहन न कर सका । वह एकदम से आग-बबूला हो उठा । चिल्ला कर वह बोला—क्या तूने मुझे कुत्ता या बिल्ली समझ रक्खा है जो हर एक मामले में खाने को ही बात को लेकर ताने दिया करती है ? जब मन में आता है, तभी कह बैठती है कि पेट भर खाने को नहीं मिला ! भला किस दिन तुझे दो बार खाने को नहीं मिला ?

दुःख-क्लेश से निरन्तर द्वन्द्व करते-करते विराज का शरीर जर्जर हो उठा था और उसमें पहने का-मा धैर्य और सहिष्णुता का भाव अब नहीं रह गया था । इससे वह भी क्रुद्ध भाव से ही बोल उठी—व्यर्थ में चिल्लाओ मत ! किन तरह दो बार भोजन का ठिकाना लग जाया करता है, यह बात तुम्हें अवश्य मालूम नहीं है, किन्तु मुझे मालूम है । यदि कोई दूसरा इस बात को जानता है तो वे हैं अन्तर्यामी । इस सम्बन्ध में यदि तुम कभी कुछ कहने जाओगे तो मैं विष खाकर आत्महत्या कर लूँगी ।

यह कह कर विराज ने जब दृष्टि उठाकर देखा तब नीलाम्बर का मुख बिलकुल ही निस्तेज हो उठा था । उसके दोनों ही नेत्रों में विह्वल दृष्टि थी । उसे देखने पर ऐसा जान पड़ता था, मानों यह किर्कत्तव्य-विमूढ़ होकर ताक रहा है । स्वामी की उस समय की चितवन को देखकर विराज एकदम इतनी-सी हो

गई । वह और एक भी बात मुँह से न निकाल कर धीरे-धीरे वहाँ से हट गई ।

विराज के चले जाने पर भी नीलाम्बर वैसे ही खड़ा रहा । बाद को एक लंबी साँस लेकर वह बाहर चला आया और देवी जी के मन्दिर में जाकर एक किनारे पर बहुत ही निस्तब्ध भाव से बैठा । मानो उसके प्रचण्ड क्रोध ने बिना समझे-बूझे एक ऐसे स्थान पर उठ कर खड़ा होने के लिए उद्योग किया जो काफी ऊँचा नहीं था, इससे तुरन्त ही धक्का खाकर वह गिर पड़ा और उसे इतने ज़ोर की चोट आई कि एकदम से मृतप्राय ही हो उठा । रह-रह कर उसके कानों में विराज का वह अन्तिम वाक्य ही गूँजने लगा—किस तरह दो बार खाने का ठिकाना लगता है ? साथ ही बार-बार उसे स्मरण आने लगा विराज का उस दिन का क्लान्ति की छाया से युक्त मुख, जिस दिन वह अन्धकारमय एवं गम्भीर रात्रि में कमरे से बाहर भूमि पर पड़कर सो गई थी । सच ही तो था । आजकल दिन किस तरह बीत रहे थे और वह असहाय स्त्री अकेले ही किस तरह घर का खर्च चला रही थी, यह बात अब नीलाम्बर को जानने को बाक़ी तो थी नहीं ! अभी ज़रा देर पहले विराज की कड़ी-कड़ी बातें नुकीले वाण की तरह आकर उसके हृदय में चुभ गई थीं । किन्तु बैठे-बैठे वह परिस्थिति पर जितना ही विचार करने लगा, उतना ही उसके हृदय का वह घाव केवल भरने ही नहीं लगा, उसका क्षोभ केवल शान्त ही नहीं होने लगा, बल्कि वह धीरे-धीरे भद्दा और विस्मय में परिवर्तित होता हुआ-सा दिखाई पड़ने लगा । उसकी विराज तो केवल आज की विराज

नहीं थी। वह कितने समय की, किंतु ~~सुम-सुमन्तर~~ की थी। केवल दो दिनों के व्यवहार को ही ध्यान में रख कर, भुँभ-लाइट में कही गई उसकी केवल दो बातें ही सुन कर तो उसके सम्बन्ध में विचार किया नहीं जा सकता था ! विराज का हृदय किस वस्तु से परिपूर्ण था, इस बात को तो नीलाम्बर से अधिक और कोई नहीं जानता था।

पत्नी के सम्बन्ध की बातों पर विचार करते-करते नीलाम्बर के नेत्रों से तर-तर आँसू चूने लगे। अकस्मात् दोनों ही हाथ जोड़ कर उसने ऊपर की ओर उठाये और रुँधे हुए स्वर में कहा—हे भगवान्, मेरे पास जो कुछ है, तुम वह सभी ले लो, किन्तु मेरी विराज को न लेना। यह कहने के बाद ही उसके हृदय में इच्छा का एक प्रचण्ड वेग उत्पन्न हुआ और वह उसे ठेल-ठेल कर अपनी प्रियतमा की ओर इसलिए खे जाने लगा कि वह तुरन्त ही पहुँच कर उसे छाती से लगा ले। नीलाम्बर दौड़ता हुआ विराज के कमरे के द्वार पर पहुँचा। द्वार भीतर से बन्द था, इससे उसे बाहर ही रुक जाना पड़ा। खड़े-खड़े कपाट में हाथ से धक्का देते हुए आवेग से कॉपते हुए कण्ठ से उसने पुकारा—विराज !

विराज भूमि पर पेट के बल पड़े-पड़े रो रही थी। स्वामी की यह आवाज़ सुनने पर वह उठ कर बैठ गई।

नीलाम्बर ने कहा—तू क्या कर रही है विराज ! द्वार खोल दे। *

विराज डरते-डरते आकर चुपचाप द्वार के पास खड़ी हो गई।

नीलाम्बर ने व्यस्त भाव से कहा—खोलती क्यों नहीं है री विराज ?

अब आँसुओं से ढँधे हुए स्वर में विराज ने धीरे से कहा—परन्तु तुम मारोगे तो नहीं ?

“मारूँगा !”

पत्नी की यह बात तेज़ छुरी के समान नीलाम्बर के हृत्पिण्ड में जाकर धँस गई। वेदना, लज्जा और अभिमान के कारण उसका कण्ठावरोध हो गया। वह अचेत-सा होकर चौखट के सहारे से खड़ा रहा। विराज ने यह नहीं देखा। अनजान में ही छुरी पर छुरी मार कर वह रोते-रोते बोली—अब मैं इस तरह की बात कभी मुँह से न निकालूँगी। बताओ, तुम मारोगे तो नहीं ?

नीलाम्बर लड़खड़ाती हुई ज़बान से किसी प्रकार ‘नहीं’ भर निकाल पाया। विराज ने भी डरते-डरते धीरे से साँकल खोल दी। दरवाज़े का खुलना था कि नीलाम्बर कम्पित चरणों से भीतर प्रविष्ट हो गया और वह लड़खड़ाते-लड़खड़ाते जाकर चारपाई पर पड़ गया। उसने दोनों आँखें मूँद ली थीं। उन मुँदी हुई आँखों के दोनों ही कोनों से तर-तर आँसू बहने लगे। स्वामी का इस तरह का मुख तो विराज ने कभी नहीं देखा था। अब उसकी समझ में सब कुछ आया। वह उठ कर आई और सिरहाने पर बैठ गई। अत्यन्त ही स्नेह के साथ स्वामी का मस्तक गोद में रख कर वह अञ्चल से उसके आँसू पोंछने लगी। क्रमशः सन्ध्या का अन्धकार कमरे में प्रगाढ़ होने लगा। तो भी उन पति-पत्नी में से किसी का भी मुख नहीं खुला, कोई

किसी से बोला नहीं। अन्धकार में बिछी हुई शय्या के ऊपर दोनों ही स्थिर होकर मौन ही धारण किये रहे। परन्तु मन ही मन उन स्वामी-स्त्री ने जो बातचीत कर ली, उसे उनके अन्तर्यामी ही जान पाये होंगे। तो भी नीलाम्बर मोच रहा था कि विराज ने यह बात ज़बान पर आने कैसे दी ? मैं उसे मार-पीट भी सकता हूँ, इस बात की कल्पना उसके हृदय में कैसे उदित हो आई ? उसने मुझे इतना नीच कैसे समझ लिया ? एक तो मेरी गृहस्थी यों ही बहुत दुःखमय हो उठी है, प्रतिदिन किसी न किसी बात का क्लेश बना ही रहता है, तिस पर अब नित्य ही यह क्या होने लगा ? दो दिन भी नहीं बीत पाते कि किसी न किसी विषय को लेकर आपस में झगड़ा भी हो जाया करता है। आजकल बात-बात में हम दोनों में मनमुटाव हो जाया करता है, दृष्टि में दृष्टि मिलते ही कलह हो जाया करता है और पद-पद पर मतभेद हो जाया करता है। नीलाम्बर को सबसे अधिक चिन्ता इस कारण हुई कि मेरी इस तरह की विराज अब कैसी होती जा रही है ? आजकल जहाँ उसका स्वास्थ्य और सौन्दर्य क्रमशः क्षीण होता जा रहा है, वहीं उसके स्वभाव का माधुर्य भी कटुता के रूप में परिवर्तित होता जा रहा है। इन्हीं सब बातों पर विचार करते-करते नीलाम्बर को अपने दुःख-रूपी सागर का कहीं वार-पार नहीं सूझ पड़ता था।

भगवान् के चरणों में नीलाम्बर की भक्ति अचल और अटल थी। विधाता के विधान में उसका विश्वास असीम था। इसलिए वह अपने भाग्य पर ही पछुतावा करने लगा। अपने मन में उसने किसी को दोषी नहीं ठहराया। उसने किसी की निन्दा

भी नहीं की । देवी जी के मन्दिर की दीवार पर राधाकृष्ण की युगल मूर्ति का एक चित्र टंगा था । उसी मूर्ति के सम्मुख खड़ा होकर निरन्तर रोते-रोते वह कहने लगा—हा भगवन्, यदि तुम्हें मुझे इतने दुःख में डालना ही अभीष्ट था, तो तुमने इस तरह का अध्यवसायहीन करके क्यों भेजा है ? मैं कितना अध्यवसायहीन हूँ, कितना असमर्थ हूँ, इस बात को मुझसे अधिक तो कोई नहीं जानता !

नीलाम्बर ने कुछ विद्या नहीं प्राप्त की थी । वह कोई कामकाज भी नहीं जानता था । वह जानता था केवल दुखियों की सेवा करना । उसने केवल भगवान का नाम स्मरण करना सीखा था । इससे दूसरों का दुःख अवश्य दूर होता था, किन्तु आज संकट-काल में उसका दुःख किस प्रकार दूर हो सकता था ? आज उसके पास कुछ तो नहीं था, उसका सभी कुछ चला गया था । इसीलिए दुःख-क्रेश सहन करने में असमर्थ होकर उसने कितने बार मन ही मन सोचा था—मैं अब यहाँ न रहूँगा । विराज को लेकर जहाँ दोनों नेत्र जायँगे, चला जाऊँगा । परन्तु यह सात पीढ़ियों का वास-स्थान छोड़कर किस देव-मन्दिर के द्वार पर बैठे-बैठे, किस वृद्ध की छाया में लेटे-लेटे सुख पाऊँगा ! यह छोटी-सी नदी, यह पेड़-पौधों से घिरा हुआ घर, इस घर के बाहर जन्म भर के परिचित मनुष्यों का मुख—सब कुछ छोड़ कर किसी देश में, किसी स्वर्ग में चले जाने पर मैं एक दिन भी जीवित न रह सकूँगा ! इसी घर में मेरी मा मरी है ! देवी जी के इसी मन्दिर में मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए पिता जी की सेवा भी मैंने की है । अन्त में पिता जी के

दिवङ्गत हो जाने पर गङ्गा जी के तट पर उनकी अन्त्येष्टि किया कर आया हूँ । इसी घर में मैंने पुटी की पालन-पोषण किया है, उसका विवाह किया है । आज मैं किस तरह इस घर के मोह का परित्याग कर सकूँगा !

नीलाम्बर वहीं पर बैठे-बैठे हाथों से मुँह ढक कर रुँधे हुए स्वर से रोने लगा । क्या उसे केवल इतना ही दुःख था ? कैसे घर में वह अपनी बहन का विवाह कर आया था कि उसका ज़रा-सा हाल तक नहीं मिल रहा था । कितने दिन हो गये, उसने उसका मुख नहीं देखा था, उसके उच्च स्वर से निकली हुई “भैया” “भैया” की आवाज़ उसने नहीं सुनी थी ।

नीलाम्बर को उस समय बहन की बड़े ज़ोरों की याद आ रही थी । वह सोच रहा था कि ससुराल में मेरी बहन कितना दुःख पाती होगी । वह वहाँ पर कितना अधिक रोती होगी । परन्तु यह सब उसकी कल्पना ही कल्पना थी । पुटी के सम्बन्ध की कोई भी बात उसे मालूम नहीं हो पाई थी । अधिक चिन्ता उसे इस बात के कारण थी कि विराज के सामने वह उसका नाम तक नहीं ले सकता था । इसमें सन्देह नहीं कि विराज ने ही पुटी का पालन-पोषण किया था । तो भी उसने उसे भुला दिया था । परन्तु नीलाम्बर भला बहन को कैसे भुला सकता था ? एक ही माता-पिता की गोद में दोनों ने जन्म लिया था । पुटी जब तक छोटी थी, तब तक नीलाम्बर उसे कभी गोद में लेकर और कभी कन्धे पर लाद कर घुमाया करता था । जहाँ वह जाता था, वहाँ साथ में पुटी को भी लिये जाता था । इसके लिए नीलाम्बर को कितनी बातें सहन करनी पड़ी थीं, लोगों में उसका

कितना उपहास हुआ था । परन्तु उसने कभी किसी भी कारण से पुटी को रोने नहीं दिया । घर में उसे रोती हुई छोड़ कर वह कभी बाहर पैर तक नहीं निकाल सका । ये सब बातें केवल वह जानता था और उसकी वह छोटी बहन जानती थी ।

विराज जान कर भी नहीं जानता थी । वह इस सम्बन्ध की एक भी बात मुँह से कभी नहीं निकालती थी । पुटी के लिए मानो वह पत्थर की मूर्ति की ही तरह वाक्शक्ति से हीन हो गई थी । उसने मानो अपने स्वामी की उस निरपराध बहन को ही अपराधिनी समझ रक्खा था । यह चिन्ता शूल के समान नीलाम्बर के हृदय में निरन्तर गड़ती रहती थी, किन्तु इस सम्बन्ध में ज़रा-सी बातचीत तक करने का मार्ग नहीं रह गया था । जब कभी वह इस सम्बन्ध का कोई बात छेड़ने लगता तब विराज उसे रोकते हुए तुरन्त ही बोल उठती—ये सब बातें रहने दो । वह राजरानी होवे, किन्तु उसकी चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है । विराज इस 'राजरानी' शब्द का उच्चारण ऐसे ढंग से किया करती थी कि नीलाम्बर की अन्तरात्मा तक जल उठा करती थी । बाद को उसे कहीं गुरुजनों के शाप का भागी न होना पड़े, कहीं उसका कोई अनिष्ट न हो जाय, इस आशङ्का से वह मन ही मन व्याकुल हो उठा करता था । बहन के कल्याण के लिये भगवान् से प्रार्थना किया करता था । यदा-कदा स्त्री से छिपा कर वह पूजा-अनुष्ठान भी किया करता था । इसी तरह नीलाम्बर के दिन बीत रहे थे ।

दुर्गापूजा का समय आ गया । अब नीलाम्बर से नहीं रहा गया । स्त्री से छिपा कर उसने कहीं से एक रुपये का प्रबन्ध

किया और उसी से उसने सस्ते मेल की एक ज़नानी धोती खरीदी। उसके साथ में उसने थोड़ी-सी मिठाई भी खरीद ली और वे दोनों चीज़ें लिये हुए वह सुन्दरी के पास पहुँचा।

सुन्दरी ने नीलाम्बर को आमन दिया, उसके लिए उसने चिलम भर कर ला दी। आसन ग्रहण करने के बाद ही नीलाम्बर ने अपने फटे हुए मैले चदरे से खोल कर वह धोती और मिठाई सुन्दरी के सामने रख दी। उसने कहा—तूने उसे इतनी बड़ी किया है सुन्दरी ! जा, एक बार देख आ।

नीलाम्बर इससे अधिक कुछ नहीं कह सका। वह मुँह फेर कर चदरे की छोर से आँखें पोंछने लगा।

सुन्दरी को मालूम था कि आजकल इन लोगों के दिन कितने कष्ट से बीत रहे हैं। केवल सुन्दरी को ही नहीं, बल्कि गाँव के सभी लोगों को यह मालूम था। अस्तु, सुन्दरी ने कहा—वह कैसी है बड़े बाबू ?

मस्तक हिला कर उसने कहा—कुछ मालूम नहीं।

सुन्दरी कोई विवेकहीन स्त्री नहीं थी। परिस्थिति पर विचार करने के अनुकूल बुद्धि उसमें थी। इससे उसने और कोई प्रश्न नहीं किया। वह बोली—अच्छी बात है बड़े बाबू, मैं कल सबेरे जाऊँगी। उसके यह कहने पर नीलाम्बर उसे मार्ग में जलपान आदि करने के लिए कुछ पैसे देने लगा। परन्तु सुन्दरी ने नहीं लिया। वह बोली—नहीं बड़े बाबू, मैं न लूँगी। तुमने धोती खरीद रखी है, नहीं तो मैं वह भी न ले जाती। तुम्हारे ही समान मैंने भी तो उसे इतनी बड़ी किया है।

नीलाम्बर के नेत्रों से फिर जल चू पड़ा। मुँह फेर कर वह

बार-बार आँखें पोंछने लगा । इस तरह की समवेदना की बात उसने कभी किसी के भी मुख से नहीं सुनी थी । सभी लोग यह कहा करते थे कि नीलाम्बर ने भूल की है । उसने अन्याय किया है । पुटी के ही कारण स्वयं उसका तथा उसकी स्त्री का सर्व-नाश हो गया । उठने का उद्योग करते हुए नीलाम्बर ने सुन्दरी को विशेष रूप से सावधान कर दिया कि हम लोगों के दुःख-क्रेश का हाल पुटी को किसी प्रकार भी न मालूम होने पावे ।

नीलाम्बर चला गया । अब सुन्दरी ने एक बूँद आँसु अञ्जल से पोंछ लिया । नीलाम्बर आदमी ही ऐसा था कि मन ही मन सब लोग उससे प्रेम किया करते थे । सभी को उससे श्रद्धा थी ।

विजयादशमी के दिन दूसरे वक्त विराज ने सोने के कमरे में प्रवेश करके भीतर से द्वार बन्द कर लिया । सौँझ होते-होते कितने ही लोग उसके द्वार पर पहुँचे । कोई-कोई नीलू चाचा कह कर, कोई-कोई नीलू भैया कह कह कर भीतर घुस गये । कोई-कोई बाहर से ही पुकारने लगे ।

नीलाम्बर सूखा हुआ मुँह लिये हुए देवी जी के मन्दिर में निकला । सामने आकर वह खड़ा हो गया । यथानियम उसे प्रणाम करके तथा उससे गले मिलकर लोग बहू जी से प्रणाम करने के लिए भीतर की ओर चले । साथ-साथ आकर नीलाम्बर ने भी देखा कि विराज रसोई घर में नहीं है । उस समय सोने के कमरे का भी द्वार बन्द था । इससे उसे हाथ से थपथपा कर नीलाम्बर ने कहा—विराज, लड़के तुम्हें प्रणाम करने आये हैं ।

विराज ने भीतर से कहा—मुझे ज्वर हुआ है, मैं उठ न सकूँगी ।

उन सब के चले जाने से ज़रा देर के बाद ही फिर दरवाज़े पर हाथ का धक्का लगा । विराज ने जवाब नहीं दिया । दरवाज़े के बाहर से कोमल कण्ठ से निकली हुई आवाज़ आई—दीदी, मैं मोहिनी हूँ । ज़रा देर के लिए द्वार खोल दो ।

इस पर भी विराज नहीं बोली ।

मोहिनी ने कहा—यह न होगा दीदी, दरवाज़े की चौखट के पास चाहे समस्त रात्रि खड़ी रहना पड़े, मैं हटूँगी नहीं । आज तुम्हारा आशीर्वाद प्राप्त कर लेने के बाद ही मैं यहाँ से हटूँगी ।

विराज उठी । उसने दरवाज़ा खोला और वह सामने आकर खड़ी हुई । उसने देखा कि मोहिनी के एक हाथ में तस्तरी भर खाने-पीने की चीज़ें हैं और एक हाथ में लोटा भर भंग है । वे दोनों ही चीज़ें विराज के चरणों के समीप रखकर मोहिनी ने अपना मस्तक जेठानी के चरणों पर रख दिया । इस प्रकार प्रणाम करके वह बोली—दीदी, मुझे केवल यही आशीर्वाद दो कि मैं तुम्हारे ही समान बन सकूँ । तुम्हारे मुख से मैं और कोई भी आशीर्वाद नहीं प्राप्त करना चाहती ।

विराज ने अपने सजल नेत्रों को अञ्चल से पोंछ कर नीरव भाव से ही छोटी बहू के झुके हुए मस्तक पर हाथ रख दिया ।

छोटी बहू उठ कर खड़ी हुई । उसने कहा—दीदी, आज के दिन आँसू नहीं गिरने देना चाहिए । परन्तु वह बात तो मैं तुमसे नहीं कह सकी दीदी । तुम्हारे शरीर की जो हवा मेरे

शरीर में लग गई है, उसीके बल से मैं कहे जा रही हूँ—वह बात आगामा वर्ष ऐसे ही दिन में मैं तुमसे बनवाऊँगी ।

मोहिनी के चले जाने पर विराज ने उसकी दी हुई साम-ग्रियाँ उठा कर कमरे में रख दीं । बाद को स्थिर होकर वह बैठी । मोहिनी मेरी ओर बराबर दृष्टि रक्खा करती है, यह बात आज उसे और भी स्पष्ट रूप से मालूम हो गई । बाद को कितने लड़के आये और गये, विराज ने फिर कमरे का द्वार बन्द नहीं किया । मोहिनी ने जो खाद्य-सामग्री विराज को दी थी, प्रसाद के रूप में उसी का वितरण करके उसने विजयादशमी के दिन के आचार का पालन किया ।

विराज दूसरे दिन सबेरे क्लान्त भाव से चबूतरों पर बैठो हुई साग बना रही थी । सुन्दरी ने आकर उसे प्रणाम किया । विराज ने उसे आशीर्वाद दिया और उसने उससे बैठने को कहा ।

भूमि पर आसन ग्रहण करते ही सुन्दरी ने कहा—कल रात्रि हो गई थी, इससे आज सबेरा होते ही मैं कहने आई हूँ । परन्तु तुम चाहे कुछ भी कहो बहूजी, यदि मैं ऐसा जानती तो वहाँ किसी प्रकार भी न जाती ।

विराज सुन्दरी का अभिप्राय समझ नहीं सकी । वह उसकी ओर ताकती रह गई ।

सुन्दरी कहने लगी—घर में कोई नहीं है । सभी लोग पश्चिम में हवा खाने के लिए गये हुए हैं । घर में केवल एक बुढ़िया बुआ है । उसने ऐसी कड़ी-कड़ी बातें कहीं कि सुनकर मुझे दंग रह जाना पड़ा । वह बोली—यह धोती लौटा ले जा । दामाद तक के लिये एक धोती नहीं भेजी । केवल एक सूती

धोती लेकर पूजा का उपहार देने आई है। बाद को उसने अवाच्य-कुवाच्य कितना कहा, वह सब न तो मुझे याद है और न मैं उसे दोहराना ही चाहती हूँ।

विस्मित होकर विराज ने कहा—यह सब किसने किसे कहा है री सुन्दरी ?

सुन्दरी ने कहा—क्यों ? हमारे बाबू जी को कहा है। और किसे कहा है ?

विराज अधीर हो उठी। उसे कुछ मालूम तो था नहीं, इससे उसको समझ में कुछ नहा आया। वह बोली—हमारे बाबूजी को किसने क्या कहा है, यही बात साफ़-साफ़ बतला दे।

विराज की यह बात सुनकर सुन्दरी भी कुछ चकित हुई। वह बोली—वही बात तो मैं इतनी देर से कह रही हूँ बहूजी ! पुटी की बुढ़्डी फुफ़्रा सास को कितना घमंड है। वह कितने तेज़ मिजाज़ की है। उसने धोती नहां ली, लोटा दी ! यह कह कर अञ्चल के भीतर से निकाल कर उसने धोती विराज के सामने रख दी।

अब विराज की समझ में सारी बातें आईं। वह एक दृष्टि से धोती की ओर ताकती रह गई। उसके भीतर-बाहर सर्वत्र आग लग गई।

नीलाम्बर कहीं गया था। वह कितने समय तक लोट कर आवेगा, यह कुछ निश्चय नहीं था। इससे सुन्दरी उसके लिए प्रतीक्षा नहीं कर सकी, वह चली गई।

दोपहर को नीलाम्बर बैठा हुआ भोजन कर रहा था।

विराज ने कमरे के भीतर से वह धोती ले आकर उसके सामने रख दी और कहा—यह सुन्दरी लौटा गई है ।

मुख उठाकर देखते ही नीलाम्बर एकदम भय से वाकुल हो उठा । यह मामला विराज के सामने इस प्रकार आ सकता है, इस बात की उसने कल्पना तक नहीं की थी । अब कोई भी प्रश्न न करके वह नीचे की ही ओर ताकता हुआ बैठा रहा ।

विराज ने कहा—यह धोती उन लोगों ने क्यों नहीं ली, क्यों लौटा दी और दस बातें भी सुनाईं, यह सब सुन्दरी के पास जाने पर तुम्हें मालूम होगा ।

इतने पर भी नीलाम्बर ने मुख नहीं उठाया । साथ ही उसने इस प्रकार का भाव प्रदर्शित किया कि इस सम्बन्ध की एक भी बात सुनने की अकांक्षा उसे नहीं है । विराज भी चुप हो गई ।

नीलाम्बर की भूख-प्यास एकदम से जाती रही । वह भय-भीत होकर मुख नीचा किये हुए केवल यही अनुभव करने लगा कि विराज स्थिर दृष्टि से मेरी ही ओर ताक रही है और उसकी दृष्टि से अग्नि की वर्षा हो रही है ।

सँभ के समय सुन्दरी के घर में जाकर नीलाम्बर ने सारी बातें बारबार सुनीं । अन्त में उसने कहा—वे लोग जब घूमने के लिए पश्चिम में गये हैं, तब अच्छी तरह से ही होंगे । ठीक है कि नहीं सुन्दरी ?

मस्तक हिला कर सुन्दरी ने कहा—हाँ बाबूजी, वे लोग अवश्य अच्छी तरह हैं ।

नीलाम्बर के मुख पर प्रसन्नता की रेखा उदित हो आई ।

उसने कहा—वह कितनी बड़ी हो गई है सुन्दरी । क्या तुमने उसे देखा है ?

सुन्दरी ने हँस कर कहा—नहीं बाबू जी, उससे मुलाकात तो नहीं हुई ।

इस प्रकार का प्रश्न करने के कारण लज्जित होकर नीलाम्बर ने कहा—हाँ, तुमसे मुलाकात अवश्य न हुई होगी । परन्तु क्या तुमने किसी नौकरानी से भी उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं सुना ?

“नहीं बाबू जी ! उमकी फुफुआ मास इस तरह की बातें कर रही थी, इस तरह हाथ दिला रही थी कि वहाँ पर मुझे किसी से कुछ पूछने का ध्यान ही नहीं रह गया था ! मुझे तो उस समय भागने के लिए रास्ता मिलना भी कठिन हो गया था ।

क्षोभ के कारण नीलाम्बर का मुख मलिन हो गया । कुछ क्षण तक स्थिर भाव से बैठे रहने के बाद उसने कहा—क्यों सुन्दरी, भला मेरी पुटी क्या दुबली हो गई होगी या कुछ मोटी हुई होगी ? तेरी क्या धारणा है ?

प्रश्नों के उत्तर देते-देते सुन्दरी झान्त हो उठी थी । इस-लिए संक्षेप में ही उसने उत्तर दिया—कुछ मोटी ही हुई होगी ।

नीलाम्बर आशान्वित हो उठा । उसने कहा—शायद तू सुन आई होगी ! है कि नहीं ?

मस्तक हिला कर सुन्दरी ने कहा—नहीं बाबू जी, मैंने वहाँ पर किसी से कुछ नहीं सुना ।

“तब तू कैसे जान पाई ?”

इस बार सुन्दरी कुछ झुँझला उठी । वह बोली—मैंने सुना

कहाँ ! तुमने यह जानना चाहा था कि मेरी क्या धारणा है, इससे मैंने अनुमान से कहा कि वह मोटी हो गई होगी ।

मस्तक हिला कर नीलाम्बर ने कोमल कण्ठ से कहा—
ऐसी बात है ?

इतना कह कर नीलाम्बर सुन्दरी के मुख की ओर चुपचाप ताकता रहा । अन्त में एक लम्बी साँस लेकर वह उठ कर खड़ा हो गया । उसने कहा—तो आज मैं चलता हूँ सुन्दरी, फिर कभी आऊँगा ।

अब सुन्दरी ने शान्ति की साँस ली । वस्तुतः उसका कोई अपराध नहीं था । एक तो कोई ऐसी बात नहीं थी, जो बतलाने योग्य होती; दूसरे एक ही बात को सौ-सौ तरह से बतलाने पर भी नीलाम्बर का कौतूहल निवृत्त नहीं हो पाता था । इस प्रकार लगानार दो घंटे से बकते-बकते सुन्दरी परेशान हो गई थी इससे नीलाम्बर के मुख से जाने की बात सुनकर शीघ्रतापूर्वक वह बोली—हाँ बाबू जी, अब रात्रि हो गई है । किसी दिन ज़रा कुछ पहले आना, तो मारी बातें होंगी ।

इतनी देर के बाद नीलाम्बर का ध्यान सुन्दरी की उत्कण्ठा-पूर्ण व्यग्रता की ओर गया । “अच्छा अब चलता हूँ” यह कह कर वह वहाँ से चल दिया ।

सुन्दरी की उत्कण्ठा का एक विशेष कारण था । जिस समय की यह बात है वह नितार्ई गांगुली के आने का समय था । नितार्ई गांगुली समीप के ही एक दूसरे टोले में रहा करते थे और सुन्दरी का हाल-चाल जानने तथा उसे पद-धूलि देने के लिए उसके यहाँ प्रतिदिन एक बार आया करते थे । आज वे

पद-धूलि देने के लिए कहीं मालिक की उपस्थिति में ही न आ पहुँचें, यह आशङ्का सुन्दरी के अन्तःकरण का व्यग्र कर रही थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि आजकल भिन्न-भिन्न कारणों से सुन्दरी का दिमाग बदल गया था और ज़मांदार के अनुग्रह का पात्र होने के कारण उमकी लज्जा गर्व के रूप में परिवर्तित होती जा रही थी; किन्तु फिर इस सदाचारी और निष्कलङ्क ब्राह्मण के सामने अपना निन्द्य-रूप प्रकट करने का साहस उसे किसी प्रकार भी नहीं हो रहा था। यही कारण था कि नीलाम्बर जब देर तक जमा रहा, तब इस आशङ्का से कि कहीं इनकी उपस्थिति में ही नितार्ई गांगुली न आ पहुँचें, वह लज्जा से मरी जा रही थी।

नीलाम्बर के चले जाने पर सुन्दरी पुलकित हृदय से द्वार बन्द करने के लिए आई। परन्तु सामने की ओर दृष्टि दौड़ा कर जब उसने देखा तब वे फिर लौटे आ रहे थे। इससे कपाट में हाथ लगाये हुए वह अप्रसन्न भाव से प्रतीक्षा करने लगी। उमके मुख पर द्वादशी के चन्द्रमा का प्रकाश पड़ रहा था।

समीप आकर नीलाम्बर ने एक बार इधर-उधर किया। बाद को चदरे को छोर से एक अधेली निकाल कर लज्जापूर्ण एवं कोमल कण्ठ से वह बोला—हे सुन्दरी, तुझसे कोई बात कहने में लज्जा करने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि तुझे सारा हाल मालूम है। मेरे पास केवल यही एक अधेली है, तू इसे ले ले। यह कह कर नीलाम्बर ने अधेली देने के लिए सुन्दरी की ओर अपना हाथ बढ़ाया। परन्तु सुन्दरी दाँतों से जीभ दबाकर पीछे हट गई।

नीलाम्बर ने कहा—हे सुन्दरी, मैंने तुम्हें कितना कष्ट दिया, किन्तु आने-जाने का खर्च तक नहीं दे सका। इससे अधिक उससे कुछ कहा न गया। आँसुओं से उसका कण्ठ रुद्ध हो उठा।

सुन्दरी मुहूर्त्त भर कुछ सोचती रही। उसके बाद ही हाथ फैला कर वह बोली—लाओ। तुम चाहे कंसी भी अवस्था में क्यों न होओ, मेरे सदा के मालक हो। तुम्हारे सामने किसी बात के लिए 'नहीं' कहना मेरे लिए शोभाजनक नहीं है। यह कह कह उसने अधेली ले ली। उसे माथ से लगा कर अञ्चल की छोर में बाँधते-बाँधते वह बोली—तो फिर एक बार भीतर आइए। यह कह कर सुन्दरी भीतर चली गई। उसके पीछे-पीछे नीलाम्बर भी आँगन में पहुँच गया।

सुन्दरी कोठरी में गई। मिनट भर के बाद ही उसमें से निकल कर मुट्ठी भर रुपये उसने नीलाम्बर के चरणों के समीप रख दिये और भूमिष्ठ होकर उन्हें प्रणाम करने के बाद उसने उनकी पद-धूलि ग्रहण की और उसके बाद वह उठ कर खड़ी हुई।

नीलाम्बर को विस्मय के मारे हक्का-बक्का होकर खड़े देख कर ज़रा-सी मुस्कराहट के साथ सुन्दरी बोली—बाबू जी, इस तरह ताकते हुए खड़े रहने से तो काम नहीं चलेगा। मैं आपकी चिरकाल की दामी हूँ। शूद्र होने पर भी ऐसा करने का अधिकार एकमात्र मुझे ही है।

ऐसा कहने के बाद नीलाम्बर के चरणों के समीप झुक कर उसने रुपये उठा लिये। उन्हें उनके चदरे में बाँधते-बाँधते वह बोली—बाबू जी, ये रुपये तुम्हारे ही दिये हुए हैं। मेरा

विचार तीर्थयात्रा करने का था । इससे देवता को अर्पण करने के निमित्त मैंने इन्हें रख छोड़ा था । परन्तु मेरा जाना नहीं हो सका । इधर देवता स्वयं घर में आ गये । अब उनके उपहार के निमित्त रक्खा हुआ द्रव्य उन्हें समर्पित है ।

सुन्दरी के ऐसा कहने पर भी नीलाम्बर मुँह से कोई बात नहीं निकाल सका । सुन्दरी ने रुपये अच्छी तरह चदरे में बाँध दिये । तब वह बोली—बहूजी अकेली ही हैं । अब यहाँ मत रुको, चले जाओ । परन्तु यह बात उन्हें किसी प्रकार भी न मालूम होनी चाहिए ।

नीलाम्बर कुछ कहने जा रहा था, किन्तु उसे रोक कर सुन्दरी बोल उठी—बाबू जी, तुम लाख कहो, परन्तु मैं सुननेवाली नहीं हूँ । यदि आज तुम मेरा मान नहीं रखोगे तो मैं माथा पटक-पटक कर प्राण दे दूँगी ।

नीलाम्बर के चदरे का वह अंश उस समय भी सुन्दरी के ही हाथ में था । इतने में “क्या हो रहा है जी ?” यह कह कर खुले हुए द्वार से नितार्ई गांगुली सीधे आँगन में ही आ पहुँचे ।

सुन्दरी ने नीलाम्बर का चदरा छोड़ दिया । नीलाम्बर भी सुन्दरी के घर से निकल कर चल पड़ा ।

अवाक् होकर क्षण भर खड़े रहने के बाद नितार्ई ने कहा—वह नीलू बदमाश था न ?

सुन्दरी मन ही मन क्रुद्ध हो उठी । किन्तु स्वाभाविक स्वर में ही वह बोली—हाँ, वे मेरे मालिक थे ।

सुनने में आता है कि आजकल उसे पेट भर अन्न तक नहीं

मिलता । परन्तु इतनी रात्रि में भला वह तुम्हारे यहाँ क्यों आया था ।

“कुछ कार्य था, इसीलिए वे आये थे ।”

“ओह कार्य था ?” यह बात कह कर निताई मुख मूँद कर हँसने लगा । उसके हँसने का अभिप्राय यह था कि उसकी जैसी अवस्था के आदमी की आँवों में धूल डालना आसान काम नहीं है ।

निताई कि० अभिप्राय में हँसा, यह बात सुन्दरी की समझ में भी भली भँति आ गई । निताई पचासवें वर्ष की पार कर चुका था । उसके मस्तक के प्रायः बारह आने वाले मफेद हो चुके थे । उसकी मोछ और दाढ़ी मफाचट थी । मस्तक के ऊपर शिन्ना थी । माथे पर प्रातःकाल का लगाई हुई चन्दन की बिन्दी उस समय भी वर्तमान थी । सुन्दरी उसकी ओर एक दृष्टि से ताकती रहा । उसका उस समय की चितवन का अर्थ समझना निताई की शक्ति में पड़े थे । इसलिए कुछ उत्तेजित हो कर वह बोल उठा—तू इस तरह ताकती क्यों रह गई ?

“यों ही ताक रही हूँ ।”

“क्या ताक रही है ?”

“मैं देखती हूँ कि तुम भी ब्राह्मण हो और अभी जो चले गये हैं, वे भी ब्राह्मण ही हैं । किन्तु तुममें और उनमें कैसा आकाश-पाताल का अन्तर है । इस बात का अभिप्राय समझने में असमर्थ होकर निताई ने पूछा—अन्तर किस बात में है ?

सुन्दरी ज़रा-सा हँसकर बोली—बुड्ढे आदमी हो, ओस में मत खड़े रहो । चबूतरे पर आकर बैठो । परन्तु तुम जो अन्तर

की बात कह रहे हो गोंगुली बाबू, तुम्हारी ओर ताक कर मैं सोच रही थी कि मेरे मालिक के चरणों की धूलि का एक कण पा जाने पर भी तुम्हारे जैसे कितने गोंगुलियों के कितने जन्म मार्यक हो जाते ।

सुन्दरी की यह बात सुनकर नितार्ई के विस्मय और क्रोध की सीमा न रही । अवाक् होकर वह सुन्दरी की ओर ताकता रह गया । इधर सुन्दरी एक चिलम लेकर तम्बाकू चढ़ाते-चढ़ाते अत्यन्त ही स्वाभाविक स्वर में कहने लगी—बुरा न मानना देवता जी, यह बात बिलकुल सच है । यह केवल आज की ही बात नही है, मैं बराबर देखती आ रही हूँ । मालिक के जनेऊ की ओर देखने पर दृष्टि चकाचौंध हो जाती है । ऐसा जान पड़ता है, मानो इनकी गर्दन पर आकाश की बिजली चमक रही है । तुम लोग मे वह तेज कहाँ है ? तुम लोगों की ओर ताकने पर तो मुझे हँसा आती है ।

यह कह कर सुन्दरी खिलखिला कर हँस पड़ी । एक तो नितार्ई पहले से ही ईर्ष्या के मारे जला जा रहा था, दूसरे अब वह क्रोध से उन्मत्त हो उठा । जलते हुए अंगार की तरह आँखें लाल-लाल किये हुए वह चिल्ला कर बोला—इतना घमंड मत कर सुन्दरी ! ये गाल पिचक जायँगे ।

चिलम फूँकते-फूँकते समीप आकर सुन्दरी ने हँस कर कहा—कुछ नहीं हाँगा । लो, तम्बाकू पिओ । तुम्हारे ही मुख में कालिमा लग कर रहेगी । मेरे मालिक को दुःख में पड़ा हुआ देखकर तुम जिस मुँह से हँस रहे हो, वह मुँह टूटे बिना न रहेगा ।

नितार्ई ने एक फूँक मारने के बाद ही चिलम उठाकर फेंक

दी । वह उठकर खड़ा हो गया । सुन्दरी ने उसके चदरे की छोर पकड़ ली । हँस कर वह बोली—बैठो, बैठो, जाओ मत । तुमको क्रसम है ।

निताई क्रोध से अधीर तो था ही, उसने ज़ोर से अपना चदरा खींच लिया । बाद को—जहन्नुम में जाओ, जहन्नुम में जाओ, तुम्हारा नाश हो जाय, अदि वाक्यों के द्वारा सुन्दरी को शाप देते हुए तेज़ी से उसके घर से निकल गया ।

सुन्दरी वहीं पर बैठ गई । ज़रा देर तक वह खूब हँसती रही । बाद को वह उठी और जाकर उसने बाहर का दरवाज़ा बन्द कर लिया । धीरे-धीरे वह कहने लगी—कहते हैं अन्तर किस बात में है ! ब्राह्मण उन्हें कहना चाहिए । इतने दुःख में भी उनके मुख पर हँसी की रेखा सदा वर्त्तमान ही रहा करती है । दृष्टि उठाकर उनकी ओर ताकने पर ऐसा जान पड़ता है—इनका शरीर क्या है, मानो आग का जलता हुआ अंगार है ।

(६)

ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि यह किसकी कृपा थी, विन्तु उस दिन की घटना का हाल विराज के कानों तक पहुँचे बिना नहीं रह सका । जिस किसी ने यह संवाद वहाँ तक पहुँचाया, उसने इसे काफ़ी विकृत कर दिया, बहुत कुछ नमक-मिर्च मिलाकर इसे विराज से बतलाया । उस दिन उसी विषय पर बातें करने के लिए पड़ोस के ही एक घर की बुआ जी आई थीं । विराज ने ध्यानपूर्वक उनकी सारी बातें सुन लेने के बाद गम्भीर होकर कहा—बुआ जी ! उनका एक कान काट लेना चाहिए ।

बुआजी अप्रसन्न होकर चली गई। रास्ते में वे बकती ही गई—मैं तो उसे अच्छी तरह जानती हूँ। गाँव में इस तरह की अवारा क्या और भी कोई स्त्री है ?

स्वामी को बुलाकर विराज ने कहा—मुन्दरी के यहाँ तुम फिर कब गये थे ?

भय के मारे नीलाम्बर सूख गया। संकोचमय स्वर में उसने उत्तर दिया—कई दिन हुए, पुटी का समाचार पूछने के लिए मैं उसके पास गया था !

उसके यहाँ अब कभी मत जाना। सुनने में आता है कि आजकल उसका स्वभाव और चरित्र बहुत ही सदोष हो गया है।

यह बात कह कर विराज अपने काम में लग गई। बाद को कितने दिन बीत गये। प्रतिदिन ही सूर्य नारायण उदय होते और अस्त हो जाया करते। कोई ऐसा उपाय तो था नहीं कि उनके इस नियमित कार्य में व्याघात डाला जा सकता। इस प्रकार एक-एक करके क्रमशः जाड़े के दिन बीत गये। गर्मी के दिन भी बीतने को ही थे। विराज के मुख पर एक घनी छाया पड़ी हुई थी। वह क्रमशः अधिक से अधिक घनी होती जा रही थी। साथ ही उसके नेत्रों की दृष्टि क्लान्त एवं अधिक प्रखर होती जा रही थी। जो कोई भी विराज की ओर ताकने का उद्योग करता, उसकी दृष्टि मानो अपने आप ही झुक जाती। कोई विष-धर सर्प भाले की नोक में नथ जाने पर भाले में ही बार-बार दाँत मारते-मारते थक कर जब अशक्त हो जाता है तब वह जिस प्रकार की दृष्टि से ताकता है, ठीक उसी प्रकार विराज की भी दृष्टि करुण किन्तु भीषण हो उठी थी। आजकल स्वामी से

उसकी बोलचाल प्रायः बंद नहीं थी। वे प्रायः बाहर ही बाहर रहा करते थे। बीच-बीच में चोर की तरह वे किसी समय घर आते और चोर की ही तरह निकल जाते ! उनके आने-जाने की ओर विराज मानो कभी दृष्टिपात ही नहीं करती थी।

आजकल सभी लोग विराज से डरा करते थे। केवल छोटी बहू उससे नहीं डरती थी। अवसर मिलते ही वह बीच-बीच में आकर उपद्रव किया करती थी। पहले तो उससे छुटकारा प्राप्त करने के लिए विराज ने बड़ा प्रयत्न किया था, परन्तु उसे सफलता नहीं प्राप्त हो सकी। विराज जब आँखें लाल करता तब छोटी बहू उसके गले से लिपट जाता। जब कभी वह उसे डाँटती तब वह ज़ोर से जेठानी के पैर पकड़ लेती।

दशहरा का दिन था। बड़े सवेरे छोटी बहू उठी। चुपके से आकर उसने जेठानी को पकड़ा। वह वाली—अभी कोई उठा नहीं दीदी, चलो, नदी में एक डुबकी लगा आवें।

जब से उस पार जमींदार का बाट बाँकर तैयार हुआ था, तब से विराज का नदी में स्नान करना बन्द हो गया था।

आज छोटी बहू के प्रस्ताव के अनुसार वे देवरानी-जेठानी स्नान करने के लिए गईं। स्नान से निवृत्त होने पर जल भर कर जैसे ही वे नदी से निकलीं, वैसे ही उनकी दृष्टि जमींदार राजेन्द्रकुमार की ओर गई। वह एक वृद्ध के नीचे खड़ा था। उस स्थान का अन्धकार अभी तक पूर्ण रूप से नष्ट नहीं हुआ था। तो भी दोनों स्त्रियों ने राजेन्द्रकुमार को पहचान लिया। छोटी बहू तो डर के मारे सन्नाटे में आ गई। विराज के पीछे आकर वह खड़ी हुई। विराज को बहुत ही विस्मय हुआ। मन

ही मन वह कहने लगी—यह इतने सवेरे यहाँ पर कैसे आया ? किन्तु क्षण भर के बाद ही एक बात की सम्भावना उसके हृदय में उदित हुई । उसने मोचा कि कदाचित् ग्रह प्रतिदिन ही यहाँ पर इसी प्रकार पहरा दिया करता है । अत्यन्त ही अल्पकाल की द्विविधा के बाद विराज ने देवरानी का एक हाथ पकड़ कर उसे खींचा । वह बोली—खड़ी मत रहो लोटी बहू, चली आओ ।

देवरानी को बगल में करके तेज़ी से पैर बढ़ाते हुए विराज ने उसे घर तक पहुँचा दिया । बाद को एकाएक न जाने कौन-सा विचार उसके मन में उदित हुआ कि वह खड़ी हो ग- । ज़रा देर के बाद धीरे-धीरे लौट कर वह राजेन्द्र के समीप आ गई । उसके दोनों ही नेत्र जल उठे । राजेन्द्र आँधेरे में भी विराज की वह तेजपूर्ण दृष्टि न मढ़न कर सका । उसने अपना मुख नीचा कर लिया ।

विराज ने कहा—आपने एक प्रतिष्ठित कुल में जन्म ग्रहण किया है । आप एक बड़े आदमी हैं । परन्तु आपका यह कौमी प्रवृत्ति है ?

राजेन्द्र हक्क-बक्का हो गया था । विराज की इस बात का वह कोई उत्तर नहीं दे सका ।

विराज कहती ही गई—आपकी जमींदारी चाहे कितनी ही बड़ी क्यों न हो, किन्तु आप जहाँ पर इस समय खड़े हैं, वह भूमि मेरी है ।

हाथ से नदी के उस पार बने हुए घाट की ओर संकेत करके विराज ने कहा—आप कितने नीच हैं, यह बात इस घाट की एक-एक ईंट जानती है । मैं भी जानती हूँ । कदाचित् आपके

कोई मा-बहन नहीं है। बहुत दिन पहले मैंने अपनी नौकरानी से कहला भेजा था कि आप यहाँ न आया कीजिए। परन्तु आपने मेरी इस बात पर ध्यान देने की कृपा नहीं की।

राजेन्द्र इस तरह दंग हो गया था कि इतने पर भी उसके मुख से कोई बात नहीं निकल सकी।

विराज ने कहा—आप मेरे स्वामी को पहचानते नहीं। यदि पहचानते होते तो यहाँ कभी न आते। इसीलिए मैं आज आप से कहे देती हूँ फिर कभी यहाँ आने से पहले उन्हें पहचान लेने का कष्ट कीजिएगा।

इतना कह कर विराज वहाँ से चल पड़ी। धीरे-धीरे द्वार पर पहुँच कर वह भीतर प्रवेश करने जा रही थी, इतने में उसने देखा कि पीताम्बर एक लोटा लिये हुए द्वार पर खड़ा है।

बहुत दिनों से उन देवर-भौजाई को बालचाल बन्द थी। तो भी पीताम्बर ने विराज को पुकार कर कहा—भाभी जी, जिससे इतनी देर तक तुम बातें कर रही थी, वह वही जमींदार है या नहीं!

निमेष मात्र में विराज का मुख लाल हो गया। “हाँ” कह कर वह भीतर चली गई।

घर में प्रवेश करते ही विराज को अपनी बात भूल गई। परन्तु छोटी बहू के लिए मन ही मन वह बहुत उद्विग्न हो उठी। वह निरन्तर एकमात्र इसी बात पर विचार करने लगी—पता नहीं पीताम्बर ने उसे भी देख लिया है या नहीं। परन्तु विराज को अधिक समय तक सोच-विचार नहीं करना पड़ा। दस मिनट के बाद ही पीताम्बर के घर से मारने-पीटने की आहट

आई । साथ ही साथ दबे हुए गले से रोने और कराहने का भी शब्द सुनाई पड़ा

विराज भाग कर रसोई घर में चली गई । वहाँ वह पत्थर की मूर्ति की तरह बैठ गई ।

अभी-अभी नीलाम्बर की निद्रा भंग हुई थी । चारपाई से उठकर वह बाहर आया और मुँह धोने लगा । पीताम्बर अपने घर में गर्जन-तर्जन करके स्त्री को डाँट रहा था, साथ ही वह चट-चट उसे मार भी रहा था । नीलाम्बर कान लगा कर सुहृत् भर यह सब सुनता रहा । बाद को वह बेड़े के पास पहुँचा । लात मार कर उसने वह बेड़ा तोड़ डाला और पीताम्बर के घर में जाकर खड़ा हुआ ।

बेड़ा टूटने से जो शब्द हुआ, उससे चौंककर पीताम्बर ने मुख उठाया । सामने ही बड़े माई को यम के समान खड़ा देख कर वह चकित भाव से रुक गया ।

भूमि पर पड़ी हुई छोटी बहू को पुकार कर नीलाम्बर ने कहा—बहू, उठकर भीतर जाओ । अब तुम्हें कोई भय नहीं है ।

छोटी बहू उठकर काँपते-काँपते चली गई । तब नीलाम्बर स्वाभाविक स्वर में बोला—बहू के सामने मैं तेरा अपमान नहीं करूँगा । परन्तु तू भूल कर भी मेरी इस बात की अवहेलना मत करना कि मैं जब तक घर में हूँ, तब तक यह सब किसी प्रकार भी न होने पावेगा । तू जो हाथ बहू के ऊपर चलावेगा, वह हाथ मैं तोड़ दूँगा ।

इतना कह कर नीलाम्बर जाने को उद्यत हुआ । इतने में किसी प्रकार साहस का सञ्चय करके पीताम्बर बोला—घर में घुस

कर तुम मारने तो आये हो, किन्तु मैं उसे क्यों मार रहा था, क्या तुम्हें यह भी मालूम है ?

नीलाम्बर मुँह फेर कर खड़ा हो गया । यह बोला—नहीं । किन्तु मैं जानना भी नहीं चाहता हूँ ।

पीताम्बर ने कहा—तुम क्यों जानना चाहोगे । परन्तु मैं सोचता हूँ कि शायद अब यह घर छोड़कर अपने रहने के लिए मुझे कहीं अन्यत्र प्रवध करना पड़ेगा ।

नीलाम्बर पीताम्बर के मुख की ओर ताकता रह गया । बाद को वह बोला—घर छोड़कर किसे भाग जाना पड़ेगा, यह बात मुझे मालूम है पीताम्बर ! तुम्हें याद दिलाने की आवश्यकता न पड़ेगी । परन्तु जब तक कोई व्यवस्था नहीं हो जाती, तब तक तुम्हें धैर्य धारण किये रहना पड़ेगा । यह बात मैं तुम्हें बतलाये जा रहा हूँ ।

इतना कहकर नीलाम्बर चलन लगा । परन्तु पीताम्बर उसका मार्ग रोककर एकाएक उसके सामने खड़ा हो गया । उसने कहा—एक बात मैं तुम्हें बतलाये देता हूँ भैया ! दूसरे के ऊपर रोव जमाने से पहले अपने घर की ही नियन्त्रण में कर रखना कहीं अधिक अच्छा है ।

नीलाम्बर फिर भाई के मुँह की ओर ताकने लगा । इससे साहस पाकर पीताम्बर बोला—नदी के उस पार जो घाट बना है, वह किसका है, यह बात तुम्हें मालूम है कि नहीं ? अच्छा, जब से वह घाट बना है, तभी से मैंने छुाटी बहू से कह दिया है कि अब तुम नदी-तट पर मत जाया करो । परन्तु आज जब कुछ रात थी, तभी से वह उठकर भाभी जी के साथ स्नान करने गई थी ।

सम्भव है, इसी तरह ये लोग प्रतिदिन जाया करती हों। कौन इन लोगों पर बराबर दृष्टि रक्खा करता है ?

आश्चर्य में आकर नीलाम्बर ने कहा—बस इतनी ही-सी बात पर तूने उसके ऊपर हाथ छोड़ दिया ?

नीलाम्बर ने कहा—पहले बात सुन लो। वह जमींदार का लड़का है। उसका राजन बाबू या ऐसा ही कोई नाम है। देश-विदेश में उसकी कीर्ति किस तरह फैली हुई है ! आज भाभी जाँ आध घंटा तक उससे बातें करती रही। भला उनका क्या मतलब था उससे बातें करने का ?

पीताम्बर की यह बात नीलाम्बर की समझ में ठीक-ठीक नहीं आ सकी। वह बोला—कौन बातें कर रहा था रे ? विराज बहू ?

“हाँ, वे ही।”

“क्या तूने अपनी आँखों से देखा है ?”

पीताम्बर ने मुख का भाव ऐसा बना लिया मानो वह हँसने को ही है। वह कहने लगा—तुम मेरे प्रति सदा ईर्ष्या और सन्देह का ही भाव रक्खा करते हो, यह मुझे मालूम है। हमारे-तुम्हारे न्याय और अन्याय का निर्णय भगवान् ही करेंगे। परन्तु—

नीलाम्बर गरज उठा। वह बोला—फिर तूने नारायण का नाम मुँह से निकाला ? तुझे जो कुछ कहना है, वही कह।

पीताम्बर पहले तो चौंक पड़ा, किन्तु बाद को ज़रा कुछ अपने आपको सँभालकर रोषमय स्वर में कहने लगा—अपनी आँखों से देखे बिना कोई बात कहने का मेरा स्वभाव नहीं है।

तुम अपने घर के ऊपर शासन नहीं कर पाते हो, किन्तु दूसरे को खदेड़ कर मारने दौड़ते हो। भला यह भी कोई बात है ?

नीलाम्बर के मस्तक के ऊपर मानो अकस्मात् वज्र टूट पड़ा। क्षण भर तक तो उद्भ्रान्त-सा होकर वह ताकता रहा, बाद को उसने कहा—आध घंटा तक बातें करती रही ? कौन ? विराज बहू ! तूने अपनी आँखों से देखा है ?

पीताम्बर दो एक पग पीछे लौट गया था। रुक कर वह बोला—आँखों से ही देखा है। सम्भवतः आध घंटा से अधिक समय तक वे बातें करती रही होंगी।

कुछ क्षण तक नीरव भाव से ताकते रहने के बाद नीलाम्बर ने फिर कहा—अच्छा, मान लो कि वह बातें कर ही रही थीं। परन्तु तूने यह कैसे मालूम किया कि बातें करना आवश्यक नहीं था ?

मुँह फेर कर हँसने के बाद पीताम्बर बोला—यह मैं नहीं जानता। परन्तु मेरे लिए भी यह उचित नहीं था कि मैं इस तरह मारता-पीटता। वह घाट छोटी बहू के लिए तो बनाया नहीं गया है !

मुहूर्त भर के लिए नीलाम्बर को उत्तेजना आ गई। दोनों हाथ उठा कर वह पीताम्बर की ओर दौड़ा तो, किन्तु रुक गया। अन्त में पीताम्बर के मुँह की ओर ताकते हुए उसने कहा—एक तो तू जानवर है, दूसरे मेरा छोटा भाई है। बड़ा भाई होकर मैं तुझे कोई शाप नहीं देना चाहता। मैंने तुझे क्षमा कर दिया। परन्तु तूने अपने गुरुजन को जो बात कही है, उसके लिए भगवान तुझे क्षमा न करेंगे। जा।

यह कह कर नीलाम्बर धीरे-धीरे अपने घर की ओर चला गया । जो बेड़ा टूट गया था, उसे वह अपने हाथ से ही बाँधने लगा ।

विराज ने कान लगा कर सब कुछ सुना । लज्जा और घृणा के मारे सिर से पैर तक उसका सारा शरीर बार-बार काँप रहा था । एक बार उसने सोचा कि मैं सामने जाकर वे सारी बातें कह दूँ, जो मुझसे और राजेन्द्रकुमार में हुई हैं । परन्तु वह पैर नहीं बढ़ा सकी । उसके सौंदर्य के ऊपर पर-पुरुष की जो लोलुप दृष्टि पड़ी थी, उसकी चर्चा अपने मुख से भला वह स्वामी के सामने कैसे करती !

बेड़ा बाँध कर नीलाम्बर बाहर चला गया । दोपहर को थाली परोस कर विराज आड़ में ही बैठी रही । रात्रि में स्वामी के मो जाने पर वह चुपचाप शय्या पर लेटी और प्रातःकाल उनकी निद्रा भंग होने से पहले ही उठ कर कमरे से निकल गई ।

इसी प्रकार दूर-दूर रह कर विराज ने दो दिन बिता दिये । इस बीच में नीलाम्बर ने उससे कोई बात नहीं पूछी । तब विराज के हृदय में धीरे-धीरे एक दूसरे ही प्रकार की आशङ्का उदित होने लगी । स्त्री के सम्बन्ध में इतने बड़े अपराध का हाल सुन कर स्वामी के हृदय में जो किसी प्रकार का कौतूहल नहीं जाग्रत हुआ, इसका कोई न्याय-सङ्गत कारण वह नहीं खोज सकी । उसके मन में एक बात की संभावना और उत्पन्न हुई । वह यह थी कि इस घटना के कारण वे विस्मित हुए हैं । किन्तु इसके कारण भी उसे सान्त्वना नहीं मिल सकी । लगातार दो दिनों तक जहाँ वह निरन्तर छिपती फिरी है, वहीं वह बराबर

इस बात की आशा करती रही है कि अब चर्चा छिड़ेगी, अभी ही मुझे बुलाकर वे घटना का विवरण पूछेंगे। उस अवस्था में मैं भी आदि से अन्त तक सारा वृत्तान्त कह कर स्वामी के चरणों के नीचे अपने हृदय का भारी बोझ उतार कर रख दूँगी। इससे मेरा चित्त शान्त हो जायगा। परन्तु यह तो कुछ भी न हुआ। स्वामी अपना मुख बन्द ही किये रहे।

विराज ने एक बार मन में यह धारणा स्थापित करने का उद्योग किया कि स्वामी ने कदाचित् इस बात पर बिल्कुल विश्वास ही नहीं किया। परन्तु मैं जो बराबर अपने आग को छिपा रखने के लिए उद्योग करता हूँ, यह दैवकर भी क्या उनके हृदय में संशय का उद्रेक न होता होगा। एक बार विराज के मन में आया कि राजेन्द्रकुमार के सम्बन्ध की सारी बातें स्वामी से कह दूँ, परन्तु उसके बाद ही उसने फिर सोचा कि जो बात इतने दिनों में उनमें छिपाता आ रही हूँ, वह अपने आप, बिना पूछे, उनके सामने कैसे छेड़ूँ ?

वह दिन भी उसी तरह बीत गया। दूसरे दिन सबेरे भय से आर्त, भय से आतुर हृदय लिये हुए विराज किसी प्रकार घर का काम-काज कर रही थी। एकाएक एक भयङ्कर बान उसके हृदय के गहरे तल-देश को आलोड़ित करके भँवर के समान उठ आई—और यदि तुमने पीताम्बर की बात पर विश्वास कर ही लिया हो, तो ? सन्ध्योपामन से निवृत्त होकर नीलाम्बर उठने जा रहा था। इतने में तूफान के समान उसके सामने आकर विराज हँसने लगी।

विस्मित भाव से मुख उठा कर नीलाम्बर ने जब देखा, तब

विराज ज़ोर से दाँतों से होठ दबा कर बोल उठी—अजी, मैंने क्या किया है जो तुम बोलते नहीं हो ?

नीलाम्बर हँसा । वह बोला—तुम जब भागती फिरती हो, तब मैं किससे बोलूँ ?

“मैं भागती फिरती हूँ ? क्या तुम ज़रा सा बुला नहीं सकते हो ?”

नीलाम्बर ने कहा—जो मनुष्य भागता फिरे, उसे बुलाने से पाप होता है ?

“पाप होता है ! तो इसका मतलब यह है कि तुमने पीताम्बर को बातों पर विश्वास कर लिया है । यही न ?”

“जो बात सच है, उस पर भला विश्वास क्यों न करूँ ?”

क्रोध और दुःख के मारे विराज रो पड़ी । आँसुओं के कारण विकृत हो उठे कण्ठ से वह चिल्ला कर बोली—बात सच नहीं है । बिचकुच झूठी है । मोलह आना झूठी है । तुमने क्यों उस पर विश्वास किया ?

“तो क्या तुमने नदी-तट पर उससे बातें नहीं की ?”

विराज ने उद्धत भाव से उत्तर दिया—हाँ, की हैं ।

नीलाम्बर ने कहा—मैंने केवल इसी बात का विश्वास किया है ।

विराज ने हाथ से आँखें पोंछ डालीं । वह बोली—यदि तुमने विश्वास ही कर लिया है तो इस नीच प्रकृति के मनुष्य के समान तुमने भी क्यों नहीं दरड दिया ?

नीलाम्बर फिर हँसा । तुरन्त के खिले हुए फूल के समान निर्मल हँसी से उसका सारा मुख भर गया । दाहिना हाथ उठा

कर वह बोला—तो तू मेरे समीप आ जा, छुटपन की तरह आज भी एक बार तेरा कान ऐंठ दूँ ।

विराज निमेष-मात्र में स्वामी के समीप आ घुटने टेक कर बैठ गई । क्षण भर के बाद ही वह बड़े वेग से उसकी गोद में लोट पड़ी और दोनों ही बाहुओं से स्वामी का गला पकड़ कर फफक-फफक कर रोने लगी ।

नीलाम्बर ने पत्नी को रोने से नहीं रोका । स्वयं उसके भी दोनों ही नेत्र जल में भीग गये थे । स्त्री के मस्तक के ऊपर नीरव भाव से दाहिना हाथ रखे हुए वह मन ही मन उसे आशीर्वाद देने लगा ।

पहले पहल रुलाई का जो वेग था, उसमें कुछ देर के बाद जब थोड़ी-बहुत कमी हो गई, तब मुख ऊपर किए बिना ही वह बोली—मैंने उससे क्या कहा है, क्या यह तुम्हें मालूम है ?

नीलाम्बर ने स्नेहपूर्वक कोमल स्वर में कहा—मालूम है । तुमने उससे यही कहा है कि इस ओर फिर कभी मत आना ।

“तुमसे यह किसने बतलाया ?”

नीलाम्बर ने मुस्कराते हुए कहा—मुझसे किसी ने नहीं बतलाया । परन्तु तुमने जब एक अपरिचित गनुष्य से बातें की हैं, तो बड़े सङ्कट में पड़ने पर ही की हैं । ऐसी अवस्था में, इसके सिवा भला तुम और कौन-सी बात उससे कह सकती हो विराज ?

विराज के नेत्रों से फिर जल बहने लगा । नीलाम्बर ने कहा—परन्तु तुम्हारे लिए ऐसा करना उचित नहीं था । तुम्हें चाहिए था कि तुम मुझे सूचना दे देती और मैं जाकर उसे समझा देता । बहुत दिन पहले ही मुझे उसके मनोभाव का हाल

मालूम हो गया था। मैंने कई दिन सबेरे-सबेरे उसे यहाँ पर देखा भी। परन्तु तुमने मुझे रोक दिया था कि जमाँदार के साथ झगड़ा न करना चाहिए, इसलिए मैंने उससे कुछ नहीं कहा।

उस दिन साँझ के समय से ही आकाश मेघों से आच्छादित था। रह-रह कर पानी की भी बूँदें गिर रही थीं। रात्रि में शय्या ग्रहण करने पर पति-पत्नी में फिर उसी विषय पर बातें होने लगीं।

नीलाम्बर ने कहा—मैं आज समस्त दिन उसे देखने को प्रतीक्षा में ही था।

विराज भयभीत होकर बोल उठी—यह किस लिए ? यह किस लिए ?

“इसलिए कि यदि मैं उससे दो बातें नहीं कर लेता हूँ तो भगवान् की दृष्टि में अपराधी सिद्ध होऊँगा।”

भय और उत्तेजना के मारे विराज उठ कर बैठ गई। वह बोली—नहीं, ऐसा न होगा, किसी प्रकार भी न होगा। इस सम्बन्ध में तुम उससे एक शब्द भी न कहने पाओगे।

पत्नी के मुख और नेत्रों का भाव देखकर नीलाम्बर विस्मित हो उठा। उसने कहा—मैं स्वामी हूँ। क्या मेरा कोई कर्त्तव्य नहीं है ?

किसी प्रकार का सोच-विचार किये बिना ही विराज बोल उठी—स्वामी के जो दूसरे कर्त्तव्य हैं, पहले उनका पालन कर लो। इस कर्त्तव्य का पालन बाद को करना।

“क्या ?” यह कहकर नीलाम्बर पहले कुछ समय तक सन्नाटा खींचे रहा। बाद को धीमे स्वर में “अच्छा” कह कर उसने

एक लम्बी साँस ली और फिर करवट बदल कर चुपचाप लेट रहा ।

विराज जैसे लेटी थी, वैसे ही लेटे-लेटे स्थिर होकर सोचने लगी—आज एकाएक मेरे मुँह से यह बात कैसी निकल गई ।

आज पहले-पहल वर्षा हुई थी । इससे बाहर टप-टप करके पानी की जो बूँदें पड़ रही थीं, उनके कारण भाँगी हुई मिट्टी की सुगन्धि खुली हुई खिड़की की राह से भीतर प्रवेश कर रही थी । इधर भीतर पति-पत्नी मुँह बन्द किये हुए लेटे रहे ।

बड़ी देर के बाद नीलाम्बर ने यह निस्तब्धता भङ्ग की । गम्भीर और दुःख से भरे हुए स्वर में वह बहुत कुछ अपने आप से ही कहने लगा—विराज, मैं कितना निकम्मा आदमी हूँ, यह बात मैं तुझसे जस प्रकार सीख पाता हूँ, उस प्रकार और किसी से भी नहीं सीख पाता ।

पता नहीं, विराज की कौन-सी बात कहने की इच्छा हुई, किन्तु उसका कण्ठ खुल न सका । असह्य दुःख और दारिद्र्यता से पीड़ित इन पति-पत्नी में आज बहुत दिनों के बाद सन्धि होने जा रही थी । परन्तु जैसे ही उसका सूत्रपात हुआ, वैसे ही वह फिर छिन्न-भिन्न हो गई ।

मध्याह्न का समय था । घर में नीलाम्बर और पीताम्बर इन दोनों भाइयों में से कोई भी नहीं था । कोई और आदमी भी वहाँ नहीं दिखाई पड़ रहा था । इस प्रकार, सन्नाटा देखकर छोटी बहू रोते-रोते आई और जेठानी के चरणों के समीप लोट

पड़ा । स्वामी ने जो अपराध किया था, उसके भय से व्याकुल होकर दो दिनों से अपना एक-एक क्षण वह ऐसे ही अवसर की प्रतीक्षा में व्यतीत कर रही थी । रोते-रोते वह बोली—किसो प्रकार का शाप न देना दीदी, कम से कम मेरा मुख देव्यकर उन्हें क्षमा कर देना । यदि उन्हें कहीं कुछ हो गया तो मैं जीवित न रह सकूँगी ।

विराज ने हाथ पकड़कर छोटी बहू को उठाया । विषादपूर्ण और गम्भीर मुख से वह बोली—मैं शाप न दूँगी बहन ! मेरा अनिष्ट करने का उनमें शक्ति भी नहीं है । परन्तु उन्होंने तेरे समान मती-लक्ष्मी के शरीर पर जो बिना किसी अपराध के ही हाथ छोड़ दिया है, उनका वह अपराध माता दुर्गा को सख्य न गेगा ।

मोहनो का शरीर काँप उठा । आँखें पोंछ कर वह बोली—क्या करूँ दीदी, यह तो उनका स्वभाव ही है । जिन देवता ने उनके शरीर में इस तरह का काध उत्पन्न कर दिया है, वे ही उन्हें क्षमा भी करेंगे । ऐसे कोई भी देवता या देवी नहीं हैं, जिनकी मनौती मैंने इसके लिए न की हो । परन्तु मैं इस तरह की महापातकिन हूँ कि उनमें से किसी ने भी मेरी इस पुकार की आर कान नहीं दिया । ऐसा एक भी दिन नहीं बीतता दीदी कि—इतना कहकर वह एकाएक रुक गई ।

विराज ने अभी तक यह नहीं देखा था कि छोटी बहू के ललाट पर दाहिनी ओर एक टेढ़ा-सा खूब घना और काला दाग पड़ा हुआ है । उसकी ओर दृष्टि जाते ही डर कर वह बोल उठी—तेरे माथे पर यह दाग कैसा है री ? क्या यह मारने का दाग है ?

छोटी बहू ने अपना लज्जित मुख नीचा करके मस्तक हिलाया ।

“किस चीज़ से मारा है ?”

स्वामी के लज्जापूर्ण कार्य के कारण मोहिनी को मस्तक उठाने का साहस नहीं हो सका । नीचे की ही ओर ताकते-ताकते धीमे स्वर से वह बोली—क्रोध आने पर उन्हें शान नहीं रह जाता दीदी ।

“यह तो मैं जानती हूँ । परन्तु उन्होंने किस चीज़ से मारा था ?”

मोहिनी उसी प्रकार नीचे की ही ओर ताकते-ताकते बोली—
उनके पैरों में स्लीपर थे—

विराज सन्नाटे में आकर बैठी रही । उसके दोनों नेत्रों में मानो आग की चिनगारियाँ-सी निकलने लगीं । ज़रा देर के बाद दबे हुए और विकृत कण्ठ से वह बोली—किस तरह तुमसे यह सहा गया है छोटी बहू !

ज़रा-सा मुख ऊपर करके छोटी बहू ने कहा—क्या करूँ दीदी, मार खाते-खाते मुझे सहन करने का अभ्यास हो गया है !

विराज के कानों तक मानो यह बात पहुँची ही नहीं । विकृत कण्ठ से वह बोली—तिस पर भी तू उसी के लिए क्षमा माँगने आ ई है ?

जेठानी के मुँह की ओर ताकते हुए छोटी बहू ने कहा—हाँ दीदी, तुम्हारे प्रसन्न न होने पर उनका अमङ्गल होगा । इसके सिवा दीदी, तुम जो यह बात कह रही हो कि मैं कैसे सहन कर पाती हूँ, यह तो मैंने तुम्हीं से सीखा है । मुझे जो कुछ भी जान-कारी है, वह सब तुम्हारे चरणों•••••

विराज अधीर हो उठी। बीच में ही बात काटकर वह बोली—नहीं छोटी बहू, नहीं। तू मुँह से झूठी बात मत निकाल। इस तरह का अपमान मैं तो नहीं सहन कर सकती।

ज़रा-सा हँसकर छोटी बहू ने कहा—अपना अपमान सहन कर लेना ही क्या बहुत बड़ा काम है दीदी ! संसार में कितनी ऐसी सौभाग्यशालिनी स्त्रियाँ हैं, जिनके भाग्य में तुम्हारा जैसा स्वामी बदा हो। इतने पर भी तुम जो कुछ सहन करती रहती हो, वह यदि हम लोगों को सहन करना पड़े तो हमारी तो कचूमर निकल जाय। उनके मुख में हँसी नहीं है, मन में सुख नहीं है, तुम्हें यह रात-दिन अपनी आँखों से देखना पड़ता है। ऐसे स्वामी की इस तरह की संकटमय अवस्था तुम्हें छोड़कर भला और कौन-सी स्त्री सहन कर सकती है दीदी ! ✓

विराज मौन रही।

छोटी बहू ने भ्रम से जेठानों के दोनों पैर पकड़ लिये और बोली—बोलो, तुमने उन्हें क्षमा किया या नहीं ? मैं जब तक तुमसे 'हाँ' न करा लूँगी, तब तक तुम्हारे पैर न छोड़ूँगी। दीदी, तुम्हारे प्रसन्न हुए बिना उनकी रत्ना कोई न कर सकेगा।

विराज ने अपने पैर खींच लिये। छोटी बहू की टुड्डो पकड़ कर वह बोली—क्षमा किया।

छोटी बहू जेठानी के चरणों की धूलि एक बार ओर मस्तक से लगाकर मुख पर प्रसन्नता का भाव विकसित किये हुए चली गई। परन्तु विराज हक्का-बक्का-सी होकर उसी स्थान पर बड़ी देर तक चुपचाप बैठी रही। उसके हृदय के अन्तस्तल से पुकार-

पुकार कर मानो कोई बार-बार कहने लगा—यही देखकर सीख लो विराज !

छोटी बहू उस दिन से काफ़ी समय तक विराज के घर में अवश्य नहां आई, किन्तु वह अपनी एक आँख और एक कान उसके घर की ही ओर लगा रखती थी । आज दिन में प्रायः एक बजे बहुत ही सावधान होकर इधर-उधर दृष्टि दौड़ाते-दौड़ाते उसने इस घर में प्रवेश किया ।

विराज गाल पर हाथ रखे हुए रमोई-घर के चबूतरे पर बैठी थी । छोटी बहू को आती देखकर भी वह वैसे ही शान्तभाव से बैठा रही ।

छोटी बहू आकर जंठानी के समीप बैठ गई । उसके चरणों का स्पर्श करके उसने अपना हाथ मस्तक से लगाया । बाद को धीरे-धीरे वह बोली—दीदी, क्या तुम पागल होती जा रही हो ?

विराज ने मुँह फेर कर तांत्र कण्ठ में उत्तर दिया—तू तो नहीं पागल होती जा रही है ?

छोटी बहू बोली—दीदा, अपने साथ तुलना करके तुम मेरे ऊपर अपराध मत लादो । तुम्हारे इन चरणों की धूलि के बराबर भी मैं नहीं हूँ । परन्तु मैं तुमसे यह पूछना चाहती हूँ कि तुम इस तरह की कैसे होती जा रही हो ? भला आज तुमने भाई जी को खाने को नहीं दिया ?

“मैंने तो उन्हें खाने को नहीं रोका !

छोटी बहू ने कहा—तुमने नहीं रोका, यह बात यथार्थ है । परन्तु तुम एक बार क्यों नहीं गईं ? खाने के लिए बैठने पर उन्होंने तुम्हें कितने बार पुकारा, परन्तु तुमने ज़रा-सा उत्तर तक

न दिया । अच्छा, तुम्हीं बताओ, क्या इससे दुःख नहीं होता ? यदि तुम बुलाने पर उनके पास चली जातीं तो वे थाली तोड़कर न उठ जाते ।

अब भी विराज मौन ही रही ।

छोटी बहू कहने लगी—शायद तुम यह कहोगी कि हाथ खाली नहीं था । परन्तु यह कह कर तू मुझे भुलावे में न डाल सकोगी दीदी ! तू सदा से ही सब काम-काज तोड़ कर सामने बैठ कर उन्हें भोजन कराया करती थी । तुम्हारी दृष्टि में इससे अधिक महत्त्व का कभी और कोई भी कार्य नहीं था । किन्तु आज—

छोटी बहू की बात सुनते ही मैं तो पाई कि विराज ने पगली की तरह उसका एक हाथ पकड़ लिया और उसे ज़ोर से खींचती हुई बोली—क्या तू देखेगा ? अच्छा, वन । यह कह कर उसे पकड़ कर वह रमोई-घर में ले गई । बीच चौके में देवरानी हो खड़ी करके विराज ने कहा—यह देख ।

थाली में दृष्टि डाल कर छोटी बहू ने देखा । लाल लाल मोटे चावल का भात था और उसके पास ही करेमुआ का साग था । थाली में इन दो चीज़ों के सिवा और कुछ न था ।

आज भात के साथ में खाने के लिए और कोई चीज़ नहीं थी, इससे जाकर वह नदी से साग तोड़ ले आई थी ।

देखते-देखते छोटी बहू के दोनों नेत्रों से तर-तर आँसू चूने लगे । परन्तु विराज के नेत्रों में जल का ज़रा-सा आभास तक नहीं था । वे दोनों ही देवरानी-जेठानी नीरव-भाव से एक दूसरी की ओर ताकती रहीं ।

विराज स्वाभाविक स्वर में ही बोली—तू भी तो एक स्त्री ही है । तुझे भी भोजन बना कर स्वामी को परोसना पड़ता है । तू ही बतला दे कि भला पृथ्वी पर कोई ऐसी भा स्त्री होगी जो सामने बैठे-बैठे स्वामी को इस तरह की खाद्य-मामग्री खाते अपनी आँखों से देखेगी ? तू पहले यह बात बतला दे तो फिर तेरे मन में जो आवे, वही तू कहना । मुझे जी भर कर गालियाँ दे लेना । मैं ज़बान तक न हिलाऊँगी ।

छोटी बहू को अब मुँह खोलने का साहम नहीं हुआ । उसके नेत्रों से पहले की ही तरह अविराम धारा से आँसू बहते रहे ।

विराज कहने लगी—संयोगवश यदि किसी दिन भोजन बनाने में कोई त्रुटि हो गई है, कोई चूँज़ उनका रुचि के अनुकूल नहीं बन सकी है और इस कारण उन्होंने एक चावन भा कम खाया है, तो मेरे हृदय को किस प्रकार की अगर वेदना हुई है, मेरी वह त्रुटि मेरे अन्तस्तल में किमा तरह सुई की नोक के समान काफ़ी समय तक गड़ती रही है, यह बात किसी दूसरे व्यक्ति को चाहे भले ही न मालूम हो, किन्तु हे छोटी बहू, तुझे यह भली-भाँति मालूम है । परन्तु आज उन्हें भूखा देख कर मुझे उनके सामने इस तरह की चीज़ खाने के लिए रखनी पड़ी । आगे चल कर कदाचित् इसकी भी व्यवस्था न हो सकेगी ।

विराज से इससे अधिक कुछ नहीं कहा गया । वेदना के असह्य भार को सँभालने में असमर्थ होने के कारण उसे चक्र-सा आ गया । लटपटा कर वह देवरानी के बच्चे पर गिर पड़ी । दोनों हाथों से उसका गला पकड़ कर वह फफक-फफक कर रोने लगी । बाद को वे दोनों ही स्त्रियाँ सगो बहनों की तरह बड़ा

देर तक एक दूसरी से लिपटी रहीं, बड़ी देर तक दो अभिन्न नारी-हृदय नीरव भाव से नेत्रों के जल में तैरते रहे। बाद को मस्तक उठाकर विराज ने कहा—नहीं, मैं तुमसे न छिपाऊँगी। बात यह है कि मेरे दुःख को अनुभव करनेवाला तेरे सिवा और कोई नहीं है। बहुत मोच-विचार करने के बाद मैं इस निर्णय पर पहुँच पाई हूँ कि यहाँ से मेरे हटे बिना उनका सङ्कट दूर न होगा। किन्तु जब तक रहूँगी तब तक उनका मुन्य देखे बिना तो मैं एक दिन भी न बिता सकूँगी। इसमें मैं चला ही जाऊँगी। बताओ, मेरे चले जाने पर क्या तुम उन्हें देखोगा ?

दृष्टि उठा कर छोटी बहू ने पूछा—तुम कहाँ जाओगी ?

विराज के सूखे हुए होठों पर एक कठोर एवं शीतल हँसी की रेखा उदित हो आई। उसे सम्भवतः एक बार द्विविधा भी हुई। बाद को वह बोली—मैं किस तरह जान पाऊँगी वहन, कि कहीं जाना पड़ता है ? सुनने में आता है कि इससे बढ़ कर पाप कोई दूसरा नहीं है। परन्तु चाहे कुछ भी हो इस ज्वाला से तो अब अपने आपको बचाना ही पड़ेगा।

मोहिनी इतनी देर के बाद विराज के तात्पर्य को हृदयङ्गम करने में समर्थ हो पाई। इससे वह काँप उठी। व्याकुल भाव से जेठानी के मुख पर हाथ रख कर उसने कहा—छिः दीदी, वह बात ज़बान पर मत आने दे। जो व्यक्ति आत्म-हत्या करने की बात मुँह से निकालता है उसे तो पाप होता ही है, साथ ही वह बात जो कानों से सुनता है, उसे भी पाप होता है। छिः-छिः दीदी, आजकल तुम कैसी हो गई हो ?

विराज ने अपने मुख पर से देवरानी का हाथ हटा दिया।

वह बोली—यह मैं नहीं जानती । मैं केवल इतना जानती हूँ कि अब मैं उनके भानन की व्याख्या नहीं कर पाती द । आज तू मुझे छू कर वचन दे कि जिस प्रकार हो सकेगा, तू दोनों भाइयों में मेल करवा देगी ।

“मे वचन दे रही हूँ ।” इतना कह कर मोहिनी एकाएक बैठ गई । ज़ोर से विराज के पैर पकड़ कर वह बोली—दीदी, तो क्या तुम आज मुझे भी एक भिक्षा दोगी ?

विराज ने पूछा—वह कौन-सी भिक्षा है ?

“तो मिनट भर धैर्य रखो, मैं आती हूँ” यह कह कर मोहिनी के पैर बढाते ही विराज ने उसका अश्रुन पकड़ लिया । वह बोली—नहीं, तू मत जा । मैं किसी से एक निम भर भी कोई चीज़ न लूँगी ।

“लोगी क्यों नहीं ?”

प्रबल वेग से मस्तक हिला कर विराज बोली—नहीं, ऐसा किसी प्रकार भी न हो सकेगा । अब मैं किसी से कोई भी चीज़ न ले सकूँगी ।

छोटी बहू क्षण भर तक स्थिर दृष्टि से जेष्ठानो को आकस्मिक उत्तेजना देखती रही । बाद को वह वहीं पर बैठ गई । ज़ोर से खींचकर उसने विराज को भी अपने पास बैठा लिया । अन्त में वह बोली—दीदी, मेरी बात सुन । यहाँ नशे क्यों, तुम पहले मुझे प्यार नहीं करती थीं । मुझसे ठिकाने से बातें भी नहीं करती थीं । इस कारण एकान्त में बैठ कर मैंने किताबें पढ़ी हैं, देवी-देवताओं की कितनी स्तुति की है, इसकी संख्या नहीं है । आज उन सब की भी मेरी ओर कृपा-दृष्टि हुई है । तुमने भी छोटी

बहन कह कर मुझे पुकारा है । अब ज़रा-सा मोच कर देखो कि इस तरह वी अवस्था में यदि तुम मुझे देखती और मेरे लिए कुछ न कर पातीं, तो तुम्हारे हृदय का क्या हाल होता ?

विराज इस बात का कोई उत्तर नहीं दे सकी । वह मुख नीचा ही किये रही ।

छोटी बहू उठकर गई । ज़रा देर के बाद ही एक बड़ी-सी धाली में सब प्रकार की खाद्य-सामग्रियाँ मजा कर वह ले आई और जेठानो के सामने रख दीं ।

विराज स्थिर भाव से देख रही थी । किन्तु छोटी बहू जब उसके पास आई और उसके अञ्चल की छोर में एक मोहर बाँधने लगी, तब फिर उससे न रहा गया । देवरानी को ज़ोर से ठेल कर वह चिल्ला उठा—‘नहीं, यह किसी प्रकार भी न हो सकेगा । प्राण निकल जाने पर भी न होगा ।’

मोहिनी ने धक्का संभाल लिया । मुख उठा कर वह बोली—‘होगा क्यों नहीं ? अवश्य होगा । यह मोहर भाई जो की ही है । यह उन्होंने मुझे विवाह के समय दी थी ।’

इतना कहकर छोटी बहू ने मोहर विराज के अञ्चल में बाँध दी । बाद को झुक कर एक बार और जेठानो की चरण-भूलि ग्रहण करके वह अपने घर चली गई ।

(११)

मगरा का पीतल के कूब्जे का इतना पुराना कारखाना जिस दिन एकाएक बन्द हो गया, उस दिन वह चाण्डाल-कन्या, जो विराज के बनाये हुए साँचे बेंच आया करती थी, उसे सूचना

देने आई । उस चाण्डाल-कन्या ने केवल कारखाने के बन्द हो जाने की ही सूचना नहीं दी, बल्कि उसने यह भी कहा कि इस कारखाने के बन्द हो जाने के कारण हमारा रोज़गार ही बन्द हो गया । इस प्रकार सौँचों की बिक्री बन्द हो जाने पर स्वयं उसे तथा उसके पास-पड़ोस की अन्य चाण्डाल-स्त्रियों को कैसी-कैसी असुविधाओं का सामना करना पड़ेगा, उन सब की निर्धनता कितनी अधिक बढ़ जायगी । परन्तु यह सब सुन कर विराज चुप रह गई, वह कुछ नहीं बोली । उसने केवल एक हल्की-सी साँस भर ली थी । इससे चाण्डाल कन्या ने कुछ निराशा का-सा अनुभव किया । उसके मन में आया कि मुझे अपने दुःख का साझादार न मिल सका । इसीलिए वह दुःखी भाव से लौट गई । हाय री अबोध दुखिया के घर की स्त्रा, तुझमें भला यह समझने की शक्ति कहाँ था कि विराज की उस हल्की-सी साँस में क्या था ? विराज की इस नीरवता की आड़ में कितने ज़ोर का तूफ़ान चल रहा था । जो पृथ्वी शान्त है, जिसमें से किसी प्रकार का शब्द नहीं निकल रहा है, उसके अन्तस्तल में किस प्रकार की आग जल रही है, इस बात को भला तू क्या समझ पाती ? इस बात को अनुभव करने की क्षमता भला तुझे कहाँ मिल सकती थी ?

नीलाम्बर ने आकर कहा—मुझे नौकरी मिल गई है । आगामी दुर्गापूजा के समय से मैं कलकत्ता की एक प्रसिद्ध कीर्तन-मण्डली में ढोलक बजाया करूँगा ।

यह समाचार सुनने पर विराज का मुख मृतक के मुख के समान रक्तहीन हो गया । मन ही मन उसने कहा—मेरे स्वामी

एक गणिका के अधीन रहा करेंगे ? एक गणिका के आश्रय में रह कर भले आदमियों के बीच में वे नाचते-गाते फिरेंगे ? तब हम लोगों की उदर-पूर्ति होगी ! लज्जा और धिक्कार के मारे वह भूमि में गड़-सी जाने लगी । किन्तु मुँह खोल कर वह उन्हें वैसा करने से रोक भी न सकी । जीवन-निर्वाह के लिए और कोई उपाय तो था नहीं ! विराज के मुख की उस समय की छवि सन्ध्या के अन्धकार में नीलाम्बर ने नहीं देख पाई । यह अच्छा ही हुआ जो उसे पत्नी के मुख की उस समय की छवि देखने को नहीं मिली ।

भाटा के आकर्षण से जल जिस प्रकार प्रति मुहूर्त ही क्षय का चिह्न तट-प्रान्त में अङ्कित करते-करते दूर से दूर हटना जाता है, ठीक उसी प्रकार विराज बराबर सूखने लगी । उस क शरीर-रूपी तट की समस्त मलिनता को निरन्तर बहुत ही सूक्ष्म रूप से अनावृत्त करके उसकी देवताओं की कामना के योग्य अनुलनीय यौवनश्री न जाने कहाँ अन्तर्हित होती गई । उसका शरीर सूख गया, मुख मलिन हो गया, दृष्टि अस्वाभाविक हो गई । पता नहीं ऐसी कौन-सी भय की वस्तु दिन-दिन उसके समक्ष प्रत्यक्ष होती आ रही थी । परन्तु उसे देखने वाला कोई नहीं था । यदि कोई देखने वाला था तो वह थी छोटा बहू । वह भी महीने भर से घर में नहीं थी । उसके भाई की तबियत खराब थी, इससे वह मायके चली गई थी । नीलाम्बर दिन में प्रायः घर में रहता ही नहीं था । कभी-कभी वह अवश्य आया करता था । किन्तु रात्रि के अन्धकार में । उसके दोनों ही नेत्र प्रायः लाल हुए रहते थे । नाक से साँसे गरम-गरम निकलती थीं । विराज सब कुछ देख

पाती थी, सब कुछ समझ पाती थी, किन्तु वह कोई बात मुँह से निकालती नहीं थी। उसे कुछ बोलने की इच्छा भी नहीं होती थी। आजकल तो ज़रा-सी बातचीत करने में भी उसे थकावट मालूम पड़ने लगती थी।

इधर कई दिनों से सौंभ होने से पहले ही विराज के शरीर में जाड़ा चढ़ आया करता और मस्तक में पीड़ा होने लगती। शरीर की इसी अवस्था में सन्ध्या काल में जलाया गया टिमटिमाता हुआ दीपक हाथ में लिये हुए उसे रमोई घर में प्रवेश करना पड़ता था। स्वामी घर में नहीं रहते थे, इसलिए दिन में वह प्रायः चूल्हा ही नहीं जलाया करती थी। रात्रि में वह भोजन बनाया करती थी, परन्तु उस समय उसे ज्वर चढ़ा रहता था। इसलिए स्वामी के भोजन कर लेने के बाद वह हाथ-पैर धोकर सो जाया करती थी। इसी तरह उसके दिन बीत रहे थे। विराज ने अब देवी-देवताओं की आशा छोड़ दी। आजकल वह पहले की तरह प्रार्थना भी नहीं किया करती थी। प्रातःकाल नियमित पूजा करने के उपरान्त गले में अञ्जल लपेट कर वह देवता को प्रणाम किया करती और मन ही मन कहा करती—नागयण, जिस मार्ग पर मैं चल रही हूँ, वह शीघ्र समाप्त हो जाय, शीघ्र से शीघ्र मैं गन्तव्य स्थान पर पहुँच जाऊँ।

उस दिन श्रावण की संक्रान्ति थी। सबेरे से ही ज़ोरों की वर्षा हो रही थी। एक क्षण के लिए भी बूँदें नहीं टूटतीं। तीन दिन तक ज्वर से पीड़ित रहने के बाद क्षुधा और तृष्णा से व्याकुल होकर विराज सौंभ हो जाने पर उठ कर विस्तरे पर बैठी। नीलम्बर घर में नहीं था। परसों, यह देख कर भी कि स्त्री को बड़े ज़ोरों

का ज्वर हुआ है, वह श्रीरामपुर चला गया था। वहाँ पर उसका एक बहुत धनाढ्य शिष्य रहा करता था। नौनाम्बर को आशा थी कि वहाँ जाने पर कुछ प्राप्ति होगी—इससे उसे चला जाना पड़ा था। परन्तु चलते समय उसने विराज में यही कहा था कि रात्रि होते-होते लौट आऊँगा, वहाँ किसी प्रकार भी नहीं रुकूँगा। किन्तु आज तीसरा दिन बीत जाने पर भी विराज का उसका दर्शन नहीं मिल सका। अब आज भी एक प्रकार से उनके आने की आशा नहीं रह गई थी।

आज बहुत दिनों के बाद विराज के नेत्रों में आँसू आये थे। दिन भर में रह-रह कर कई बार वह रोई थी। उससे अब किसी प्रकार भी लेटे नहीं रहा गया। मौक्त होते ही घर में दीपक जला कर मस्तक पर एक अगौँछा डालते हुए वह कॉपते-कॉपते घर में बाहर निकल आई और रास्ते के एक किनारे पर खड़ी हुई। वर्षा-ऋतु की अँबेरी रात्रि में जहाँ तक उसका दृष्टि पहुँच सको, वहाँ तक उसने देखा। परन्तु उसे कहीं कुछ नहीं दिखाई पड़ा। तब वह फिर लौट आई। भोगो हुई साड़ी, भोगे बाल लिये हुए देवा जो के मन्दिर के खम्भे के सहारे से बैठ कर वह फिर राने लगी। चिन्तित भाव से वह मन ही मन कहने लगी—पता नहीं, उन्हें क्या हो गया? एक तो दुःख-क्लेश सहन करते-करते और उपवास करते-करते उनका शरीर यों ही निर्बल हो गया है, दूसरे उन्हें इतनी दूर चलना पड़ा। कहीं उनकी तबियत तो नहीं खराब हो गई? अथवा वे किसी घोड़ा-गाड़ी के नोचे दब तो नहीं गये? उनका किस प्रकार का अमङ्गल हुआ? मैं तो यहाँ घर में बैठी हूँ। किस प्रकार उनका हाल पाऊँ, कोन-सा उपाय करूँ!

एक और सङ्कटजनक बात थी। घर में पीताम्बर नहीं था। कल दूसरे वक्त वह छोटी बहू को बुलाने के लिए गया था। इससे इतने बड़े मकान में विराज बिलकुल अकेली थी। तिस पर वह स्वयं भी बीमार थी। आज दोपहर से उसका ज्वर अवश्य उतरा हुआ था, किन्तु घर में रक्ती भर भी कोई ऐसी चीज़ नहीं थी, जिसे वह मुख में डालती। आज दो दिन से वह केवल पानी पीकर रहती आई थी।

पानी में भीग जाने के कारण विराज को जाड़ा लगने लगा। उसके दिमाग में चक्कर आने लगा। हाथों और पैरों पर ज़ोर देकर वह किसी प्रकार उठी और देवी जी के मन्दिर के भीतर गई। वहाँ वह भूमि पर लेट कर माथा पटकने लगी।

सदर दरवाज़े पर किसी ने धक्का दिया। विराज ने कान लगा कर सुना। दूसरी बार फिर दरवाज़े के थपथपाने की आहट कानों में आई। इस आहट का सुनाई पड़ना था कि “आती हूँ” कहकर विराज निमेष-मात्र में दौड़ कर द्वार पर पहुँच गई और उसने कपाट खोल दिया। अभी मुहूर्त्त भर पहले इसी विराज में उठ कर बैठने की भी शक्ति नहीं थी।

जिसने दरवाज़ा थपथपाया था, वह पड़ोसवाले टोले के एक किसान का लड़का था। उसने कहा—मा जी, महाराज जी ने एक सूखी धोती माँगी है। दे दो।

विराज उस लड़के का आशय अच्छी तरह समझ नहीं सकी। चौखट के सहारे से खड़े-खड़े ज़रा देर तक ताकने के बाद वह बोली—धोती माँगी है ? वे कहाँ हैं ?

लड़के ने उत्तर दिया—गोपाल महाराज के पिता को गङ्गा जो पहुँचा कर अभी वे लौटे हैं ।

“गङ्गा जी पहुँचा कर ?” विराज सन्नाटे में आ गई । गोपाल चक्रवर्ती उसके दूर के रिश्तेदार थे । उसके वृद्ध पिता इधर काफ़ी दिनों से बीमार थे । आज से दो दिन पहले लोग उन्हें गङ्गा-तट पर ले गये थे । दोपहर को उनकी मृत्यु हुई है, तब उनका दाह-संस्कार करके सब लोग अभी लौटे हैं । यह सारा वृत्तान्त बतलाने के बाद लड़के ने कहा—इस जवार में महाराज जी के समान और किसी को भी नाड़ी का ज्ञान नहीं है । इससे वे भी उस दिन से साथ में ही थे ।

लड़खड़ाते-लड़खड़ाते विराज भीतर गई । वहाँ से लाकर उसने लड़के को एक सूखी धोती दी, बाद को भीतर जाकर उसने शय्या का आश्रय ग्रहण किया ।

ऐसे एकान्त घर में, जहाँ एक भी मनुष्य, एक भी प्राणी नहीं है, स्त्री अकेली पड़ी है, ज्वर और दुश्चिन्ता के कारण तथा उपवास करते-करते वह मृतप्राय हो गई है, यह सब जान-सुनकर भी जिसका स्वामी बाहर परोपकार करने में नियुक्त हो उस भाग्य-हीन-स्त्री को कहने-सुनने की क्या गुञ्जाइश होती है ? आज उसका नितान्त ही शिथिल हो गया तथा विकार से युक्त मस्तिष्क उससे बार-बार दृढ़ स्वर में कहने लगा—हे विराज, संसार में तेरा कोई भी नहीं है । तेरी माता नहीं है, तेरे पिता नहीं हैं, भाई नहीं है, बहन नहीं है । यहाँ तक कि स्वामी भी नहीं हैं । हैं केवल यम । यम के पास पहुँचे बिना किसी भी दूसरे स्थान पर शान्ति प्राप्त करना तुम्हारे लिए सम्भव नहीं है ।

बाहर भ्रम-भ्रम पानी बरस रहा था, भिक्षियाँ भङ्गार रही थीं। पवन भी सन-सन करके चल रहा था। उन सभी के स्वर से मानो एकमात्र 'नहीं-नहीं' शब्द निकल कर उसके दोनों कानों में अनन्तर प्रवेश कर रहा था। भण्डार में चावल नहीं था, गाड़ में धान नहीं था। बगीचे में फल नहीं थे। तालाब में मछलियाँ नहीं थी। सुख नहीं था, शान्ति नहीं थी, स्वास्थ्य नहीं था—घर में छोटी बहू नहीं थी, सब के साथ-साथ उसके स्वामी भी नहीं थे। तब पर भी आश्चर्य इस बात का था कि उसके हृदय में किसी के विरुद्ध लोभ का कोई भाव उदित नहीं हुआ। स्वामी में आज जो हृदयहानता विराज को दृष्टिगोचर हो रही थी, उसके भी अंशों में से एक अंश भी यदि वह एक वर्ष पहले देख पाती तो कदाचित् क्रोध के मारे पागल हुए बिना न रहती। परन्तु आज न जाने कैसा स्तब्ध अवसाद उसे स्पन्दनहीन कर डालने पर तुला हुआ था।

इसी तरह निर्जीव-सी होकर पड़े-पड़े आज विराज के हृदय में कितने प्रकार की भावनाएँ आ रही थीं। परन्तु वे सभी भावनाएँ बेतरतीब थीं, उन सब में से किसी का भी कोई तारतम्य नहीं था। इन समस्त भावनाओं के बीच में सदा के अभ्यास के अनुसार अकस्मात् उसके मन में यह बात आई—किन्तु आज समस्त दिन उनका भोजन नहीं हुआ।

अब विराज से लेटे न रहा गया। उसने भटपट बिछौना छोड़ दिया। वह दीपक लेकर भाण्डार-गृह में सावधानी के साथ खोजने लगी। वह सोच रही थी कि यदि कहीं ज़रा-सा चावल हो तो उनके लिए भात बना दूँ। परन्तु वहाँ कोई भी खाने की चीज़ नहीं

था। चावल, दाल या खाने की कोई दूसरी चीज़ एक रस्ती भी घर में नहीं मिल सकी। इससे उद्विग्न भाव से वह घर से बाहर निकली। दीवार में लगी हुई खूँटी के सहारे खड़े-खड़े मुहूर्त भर वह स्थिर भाव से मोचती रही। बाद को हाथ से फुर से दीपक बुझा कर उसने खिड़की खोली और उसी से होकर निकल पड़ी। कितना प्रगाढ़ अन्धकार था। कितनी भयङ्कर निस्तब्धता थी। मार्ग में स्थान-स्थान पर सटकन था, स्थान-स्थान पर घास-फूस और लता-गुल्म उगे हुए थे, कितनी कटीली भाड़ियाँ थीं। परन्तु इन सब में से एक में भी आज वह शक्ति नहीं थी कि वह विराज को गति का अवरोध कर सके। बग़ीचे के दूसरे किनारे पर बन में डोमों के छोटे-छोटे भोपड़े थे। उन्हीं की ओर वह चली जा रही थी। एकाएक एक भोपड़े में पहुँच कर उसने पुकारा—तुलसी !

यह पुकार सुनकर हाथ में दीपक लिये हुए तुलसी बाहर निकल आई। विराज को देखते ही विस्मय के मारे वह अवाक् हो गई। क्षण भर के बाद वह बोली—ऐसे अन्धकार में तुम क्यों आईं बहू जी ?

विराज ने कहा—थोड़ा-सा चावल दे।

“चावल दूँ ?” तुलसी चकित हो गई। उसकी समझ में यह बात किसी प्रकार भी न आ सकी कि इतने प्रतिष्ठित परिवार की स्त्री होकर भला ये मेरे यहाँ का रही चावल माँगने के लिए क्यों आई हैं ?

उसके मुख की ओर ताक कर विराज ने कहा—खड़ी न रह तुलसी ! ज़रा शीघ्रता कर।

इसी प्रकार दो-एक बार और कहने के बाद तुलसी भीतर से थोड़ा-सा चावल ले आई । उसे उसने विराज के अश्रुल में बाँध दिया । बाद को वह बोली—परन्तु यह मोटा चावल, तुम क्या करोगी बहू जी ! इस तरह का चावल तो तुम लोगों के यहाँ खाया नहीं जाता !

मस्तक हिलाकर विराज ने कहा—आज यही चावल खाया जायगा ।

तुलसी ने यह इच्छा प्रकट की कि हाथ में प्रकाश लेकर वह विराज को घर तक पहुँचा दे । परन्तु विराज ने उसे रोक दिया । वह बोली—कोई आवश्यकता नहीं है । बाद को तु अकेले लौट न सकेगी ।

इतना कह कर विराज निमेष-मात्र में अन्धकार में अदृश्य हो गई । आज वह एक चाण्डाल के घर में भिक्षा के निमित्त आई थी । उसकी भिक्षा लेकर वह लौट गई । किन्तु यह इतनी बड़ी अपमानजनक परिस्थित भी आज विराज के हृदय को ज़रा भी क्लेश नहीं दे सकी । शोक, दुःख, अभिमान, अपमान, आदि में से किसी भी वस्तु की तीव्रता का अनुभव करने की शक्ति अब विराज के शरीर में नहीं रह गई थी ।

लौट कर घर आने पर विराज ने देखा तो नीलाम्बर आया हुआ था । तीन दिनों से उसने स्वामी को नहीं देखा था । इससे आज उसकी ओर दृष्टि जाते ही शरीर के रक्त का एक-एक बिन्दु तक उद्दाम हो उठा—और एक दुर्निवार आकर्षण प्रचण्ड गति से उसे क्रमशः उसी ओर आकर्षित करने लगा । परन्तु उस समय वह विराज को ज़रा-सा टस से मस भी न कर सकी ।

तीव्र विद्युत् का संस्पर्श हो जाने पर धातु जिस प्रकार शक्ति-मय हो उठता है, उसी प्रकार स्वामी को समीप पाकर विराज भी शक्तिमयी हो उठी थी। तो भी समस्त आकर्षणों के विरुद्ध स्तब्ध भाव से खड़े-खड़े वह एक दृष्टि से ताकती रही।

नीलाम्बर ने केवल एक बार मुख उठाया था। बाद को उसने मस्तक नीचा कर लिया था। परन्तु क्षण भर ही के लिए दृष्टि मिलने पर विराज ने देख लिया कि स्वामी के दोनों ही नेत्र गोड़हर के फूल के समान लाल हो उठे हैं। विराज को यह बात अज्ञात नहीं रह सकी कि मुर्दा फेंकने के लिए गंगा जी के तट पर निरन्तर तीन दिनों से पड़े-पड़े ये लोग बार-बार गाँ जे की चिलमं फूँकते रहे हैं। पाँच-छः मिनट तक इसी प्रकार खड़ी रहने के बाद वह स्वामी के समीप आ गई और बोली—क्या कुछ भोजन नहीं हुआ ?

नीलाम्बर ने कहा—नहीं।

अब और कोई भी बात न कह कर विराज रसोई घर में जा रही थी, इतने में एकाएक उसे पुकार कर नीलाम्बर ने कहा—भला तुम इतनी रात्रि में अकेले कहाँ गई थीं ?

रुक कर ज़रा सा सोच-विचार करने के बाद विराज ने उत्तर दिया—बाहर घाट की ओर गई थी।

अविश्वास का भाव प्रकट करते हुए नीलाम्बर ने कहा—नहीं तुम घाट की ओर तो नहीं गई थीं।

“तो फिर यमराज के यहाँ गई थी।”—यह कह कर विराज रसोई घर में चली गई। घंटे भर में भात तैयार करके जब वह नीलाम्बर को बुलाने आई, तब वह आँखें मूँदे हुए झूम रहा

था। बहुत अधिक मात्रा में गाँजे का सेवन कर लेने की जो महिमा है, उसके कारण उसका दिमाग़ गरम हो उठा था और बुद्धि पर आवरण पड़ गया था। वह सीधा होकर बैठ गया और पहले ही प्रश्न की पुनरावृत्ति-सी करते हुए उसने कहा—तुम कहाँ गई थीं ?

विराज की जिह्वा उत्तर देने के लिए उद्यत हुई। परन्तु उसने उसे ज़ोर से दाँतों से दबा लिया। शान्त भाव से वह बोली—आज तुम खाकर सो जाओ कल तुम्हें यह बात बतलाऊँगी।

मस्तक हिला कर नीलाम्बर ने कहा—नहीं, मैं आज ही जानना चाहता हूँ। बतलाओ, तुम कहाँ गई थीं ?

नीलाम्बर जिस भाव भङ्गी के साथ इतना आग्रह प्रकट कर रहा था उसे देखकर विराज इतने घोर संकट में भी मुस्करा उठी और बोली—यदि न बतलाऊँ ?

“नहीं, तुम्हें बतलाना ही पड़ेगा।”

“मैं तो यह बात आज किसी प्रकार भी न बतलाऊँगी। पहले तुम खा-पीकर लेट जाओ, तब बतलाऊँगी।”

विराज की इस मुस्कराहट की ओर भी नीलाम्बर का ध्यान नहीं जा सका। दोनों ही आँखें निकाल कर उसने मुख ऊपर किया। उस समय नीलाम्बर की आँखों में वह नशा नहीं था। उनमें से हिंसा और घृणा का भाव तीव्रवेग से निकल रहा था। गरज कर वह बोला—नहीं, कभी नहीं, मैं किसी प्रकार भी न खाऊँगा। जब तक तुम यह बात ठीक-ठाक न बतला दोगी कि इतनी रात्रि में तुम कहाँ गई थीं, तब तक मैं तुम्हारा लुआ पानी तक न पीऊँगा।

विराज व्यग्र हो उठी । वह इतना अधिक व्यग्र हुई कि उस तरह की व्यग्रता मनुष्य को कदाचित् काले साँप के डँस लेने पर भी नहीं होती । कम्पित चरणों से पिछड़कर वह दरवाजे के पास गई और वहीं भूमि पर बैठ गई । उसने कहा—मेरा छुआ पानी तक न पीओगे !

“नहीं, कभी नहीं ।”

“क्यों ?”

नीलाम्बर चिल्ला उठा—तिस पर भी पूछती है, क्यों ?

मुँह से कोई बात न निकाल कर विराज ने स्थिर दृष्टि से स्वामी की ओर ताका । अन्त में वह धीरे-धीरे बोली—मैंने समझ लिया । अब मैं न पूछूँगी जो बात तुम पूछ रहे हो, वह इस समय तुम्हें बतलाऊँगी भी नहीं । बात यह है कि कल जब तुम होस में होओगे तब अपने आप समझ जाओगे । इस समय तम अपने आपे में नहीं हो ।

नशाखोर सब कुछ सह सकता है, केवल एक बात नहीं सह सकता । वह है नशे के कारण बुद्धि भ्रष्ट हो जाने की बात । यही कारण था विराज के मुख से यह सुन कर कि इस समय तुम अपने आपे में नहीं हो, नीलाम्बर के क्रोध की सीमा न रही । कर्कश स्वर में वह बोला—मैंने गाँजा पिया है, तेरे कहने का मतलब यही है ? परन्तु गाँजा आज मैंने नये नये नहीं पिया जो उसके कारण मेरा ज्ञान नष्ट हो जायगा । बल्कि तेरा ज्ञान नष्ट हो गया है । तू अब स्वयं अपने आपे में नहीं है ।

विराज उसी तरह स्वामी के मुँह की ओर ताकती रही ।

नीलाम्बर ने कहा—तू किसकी आँखों में धूल भोंकना ?

चाहती है विराज ! मेरी ! मैं बड़ा मूर्ख हूँ, इसीलिए उस दिन पीताम्बर की किसी बात पर विश्वास नहीं कर सका । परन्तु वह मेरा छोटा भाई है । बड़े भाई के प्रति उसका जो कर्तव्य है, उसका उसने पालन किया है । यदि वैसी कोई बात नहीं है, तो तू क्यों नहीं बतलाती कि तू कहाँ गई थी । तू झूठ क्यों बोल रही है ! भला तू सचमुच घाट की ओर गई थी !

अब विराज के दोनों ही नेत्र पागल के नेत्रों के समान फर-फर करने लगे । तो भी अपना कण्ठस्वर संयत करके उसने उत्तर दिया—झूठ मैं इसलिए बोल रही हूँ कि जो बात सच है, उसे सुनने पर तुम लज्जित हो जाओगे, कदाचित् भोजन भी न करोगे । परन्तु मेरी यह आशङ्का निरर्थक ही है । तुममें तो अब लज्जा या सङ्कोच कुछ नहीं है, साथ ही मनुष्यत्व भी नहीं है । क्या तुमने झूठी बात नहीं कही ! जिस तरह का छल तुमने मुझसे किया है, उस तरह का छल करने में एक पशु को भी लज्जा आती, किन्तु तुम्हें न आई । तुम साधु पुरुष बनते हो ! परन्तु घर में बीमार स्त्रियों को छोड़ कर तुम किस शिष्य के यहाँ चिलम पर चिलम फूँक रहे थे—ज़रा बतलाओ तो !

नीलाम्बर से अब न सहा गया । “बतलाता हूँ” उसके मुँह से केवल इतना ही निकला । हाथ में वह खाली पानदान लिये हुए था । उसी को उसने विराज की ओर ताक कर फेंका । पानदान काफी बड़ा था । विराज के माथे में लगने के बाद झन-झन करके वह खुल गया । और भूमि पर गिर पड़ा । देखते ही देखते नेत्र के कोने से होती हुई तर-तर करके रक्त की धारा होंट के किनारे तक वह आई और विराज का मुख रक्त से

भीग गया। बायें हाथ से माथा दबा कर वह चिल्ला उठी—तुमने मुझे मारा ?

नीलाम्बर के दोनों ही होठ काँपने लगे। वह बोला—नहीं, मैंने नहीं मारा। किन्तु तू मेरे सामने से दूर हो जा। यह मुँह अब मुझे मत दिखला ! दूर हो जा पाजिन।

विराज उठ कर खड़ी हो गई। वह बोली—जाती हूँ। एक पग आगे बढ़ कर एकाएक वह लौट पड़ी। खड़े-खड़े वह बोली—किन्तु क्या सहन कर सकोगे ? कल जब तुम्हें स्मरण आवेगा कि ज्वर की अवस्था में तुमने मुझे मारा है, घर से निकाल कर भगा दिया है, तीन दिनों तक मैंने नहीं खाया, तो भी इस तरह की अन्धकारमय रात्रि में तुम्हारे लिए भित्ति माँग ले आई हूँ, इस अवस्था में भी तुम जब मुझे खदेड़ रहे हो, तो क्या भविष्य में मेरा अभाव सहन कर लोगे ? इस पाजिन को छोड़ कर रह सकोगे या नहीं ?

विराज के माथे से रक्त बहते देख कर नीलाम्बर का नशा जहाँ का तहाँ हो गया था। वह मूढ़ की तरह चुपचाप ताक रहा था।

अञ्चल से रक्त पोंछ कर विराज ने कहा—इधर एक वर्ष से मैं जाऊँ-जाऊँ कर रही हूँ। परन्तु तुम्हें छोड़ कर नहीं जा सकी हूँ। ज़रा-सा दृष्टि डाल कर देखो तो तुम्हें मालूम होगा कि मेरे शरीर में कुछ नहीं है। नेत्रों से मैं देख नहीं पाती हूँ। एक पग भी मुझसे चला नहीं जाता। मैं न जाती। किन्तु स्वामी होकर तुमने मेरे ऊपर लाभछन लगा दिया, इससे अब मैं तुम्हें मुख न दिखाऊँगी। संसार में मेरे लिए जितने प्रकार की भी कामनायें हो

सकती हैं, उनमें से तुम्हारे चरणों के समीप प्राण त्याग करने की कामना सबसे अधिक महत्त्व की है। मुझे इस बात का बड़ा लोभ था कि मैं तुम्हारे चरणों के समीप ही प्राण त्याग करूँ। इस लोभ का मैं किसी प्रकार भी परित्याग नहीं कर पाती थी। किन्तु आज मैंने इसका भी परित्याग कर दिया।

इतना कहकर मस्तक में लगा हुआ रक्त पोंछते-पोंछते खिड़की के खुले हुए द्वार से निकल कर विराज अन्धकारमय बगीचे में अदृश्य हो गई।

नीलाम्बर को कुछ कहने की इच्छा हुई किन्तु वह ज़बान न हिला सका। उसके मन में आया कि दौड़ कर मैं भी पीछे-पीछे जाऊँ, किन्तु वह उठ नहीं सका। पता नहीं, किम जादू के मन्त्र से उसे एक अचल पत्थर के रूप में परिवर्तित करके विराज अदृश्य हो गई।

वर्षा काल की ऐसी भयंकर रात्रि में यदि कोई उस सरस्वती नदी की ओर एक बार ताकता, तो उसके हृदय में भय का सञ्चार हुए बिना नहीं रह सकता था। आज की सरस्वती नदी वही तो नहीं थी जो वैशाख में सुख कर बिलकुल पतली-सी हो गई थी और बहुत धीरे-धीरे बह रही थी। श्रावण मास व्यतीत हो रहा था। अब तक वर्षा बहुत अधिक हो चुकी थी और नदी दोनों तटों को डुबो कर बहुत प्रबल वेग से बह रही थी। एक दिन बसन्त ऋतु के प्रभात में नोलाम्बर अग्नी बहन के साथ जिस काले से पत्थर के ऊपर स्नेह सुख का अनुभव करता हुआ देखा गया था, आज इस अन्धकारमय रात्रि में न जाने कैसा हृदय लिए हुए विराज आकर उसी काले पत्थर पर काँपते-काँपते खड़ी हुई।

नीचे गम्भीर जल-राशि प्राचीर में धक्के दे-दे कर आवर्त्त की सृष्टि करती हुई बह रही थी। उसी की ओर ताक कर विराज एक बार झुकी, बाद को वह सामने की ओर ताकती रह गई। उसके पैरों के नीचे वही काला-सा पत्थर था। मस्तक के ऊपर मेघों से आच्छादित काला आकाश था। सामने काला जल था। चारों ओर काले रङ्ग की सघन और विस्तृत वन था, जिसमें पूर्ण निस्तब्धता थी। इन सब के साथ ही विराज के हृदय में आत्महत्या की प्रवृत्ति जाग रही थी, जो इन सब से कहीं अधिक काली थी। विराज उसी पत्थर पर बैठ गई और वह खूब कस-कस कर अञ्चल से अपने हाथ-पैर बाँधने लगी।

अत्यन्त प्रातःकाल की बात है। आकाश मेघों से पूर्ण रूप से आच्छादित था। रह-रह कर पानी की बूँदें पड़ रही थीं। नीलाम्बर खुले हुए द्वार की चौखट पर मस्तक रख कर किसी समय सो गया था। अभी तक उसकी आँखें खुली नहीं थीं। इतने में एकाएक किसी ने पुकार कर कहा—भैया हो रहा विराज बहू जी !

नीलाम्बर खड़बड़ा कर उठ बैठा। कदाचित् इसी प्रकार श्याम का नाम सुन कर वर्षा-काल के इसी प्रकार के एक प्रभात में, जब कि आकाश मेघों से आच्छादित थी, भी राधा भी व्याकुल होकर उठ बैठी थीं। आँखें मलते-मलते नीलाम्बर बाहर निकल आया। उसने देखा तो द्वार पर खड़े-खड़े तुलसी पुकार रही थी। नीलाम्बर कल समस्त रात्रि विराज की खोज में ही भटकता रहा। आस-पास जितने भी बग़ीचे थे, उन

सभी में उसने उसे खोजा था, एक-एक वृक्ष के नीचे देखा था । अन्त में जब कहीं भी उसका पता नहीं चल सका तब थक कर वह लौट आया और चौखट पर मस्तक रख कर लेट गया । उसे लौट कर आये अभी केवल एक घंटा हुआ था । इसी बीच में निद्रा आ गई थी ।

तुलसी ने कहा—बहू जी कहाँ हैं बाबू जी ?

हतबुद्धि-सा होकर तुलसी की ओर ताकते-ताकते नीलाम्बर ने कहा—तो तू पुकार किसे रही थी ?

तुलसी ने कहा—बहू जी को ही तो पुकार रही हूँ बाबू जी ! कल पहर भर रात्रि व्यतीत होने के बाद वे इतने अन्धकार में मेरे यहाँ गई थीं और कहने लगीं कि घर में कुछ नहीं है । मेरे यहाँ से वे थोड़ा-सा मोटा चावल माँग लाई थीं । इससे सबेरे-सबेरे जब द्वार खुला हुआ दिखाई पड़ा तब मुझे यह जान लेने की इच्छा हुई कि उस चावल से काम चला था या नहीं ?

नीलाम्बर ने मन ही मन सब कुछ समझ लिया । किन्तु उसने कुछ नहीं कहा ।

तुलसी ने कहा—तो इतने सबेरे खिड़की किसने खोली ? शायद बहू जी घाट की ओर गई हैं ?

इतना कह कर तुलसी चली गई । इधर नीलाम्बर फिर विराज की खोज में निकला । नदी के तट पर जितने भी खोह थे, जितनी भी झाड़ियाँ थीं, उसने उन सभी में खोज की किन्तु कहीं भी विराज का पता नहीं चल सका । खाने-पीने की कौन कहे, सबेरे से उसने स्नान तक नहीं किया । इस प्रकार खोजते-खोजते नीलाम्बर जब थक गया, तब वह एक स्थान पर रुक गया

और मन ही मन कहने लगा—यह कैसा पागलपन मेरे सिर पर सवार हो गया है ! मैंने जो सबेरे से कुछ नहीं खाया, इस ओर क्या अभी उसका ध्यान गया ही न होगा ! तो क्या इस अवस्था में भी वह कहीं किसी भी कारण से मुहूर्त्त भर भी रुक सकती है ! मैं व्यर्थ मैं ही सबेरे से उसकी खोज में भटक रहा हूँ ।

मन में यह बात आते ही विराज के लौटकर घर आ जाने के सम्बन्ध में नीलाम्बर को पूर्ण रूप से निश्चय हो गया । मानो वह अपने मानस नेत्रों से स्पष्ट रूप से देखने लगा कि वह घर में आकर विराजमान हो गई है और उत्कण्ठित भाव से मेरे आगमन की प्रतीक्षा कर रही है । इससे उसकी सारी दुश्चिन्ता जाती रही । वह झटपट घर की ओर लौट पड़ा । रास्ते में कितने दल-दल थे, कितने खेत थे, कितने खोह और नाले थे, उन सभी को बात की बात में पार करता हुआ वह हवा की तरह घर पहुँचा ।

दिन प्रायः व्यतीत हो चला था । पश्चिम के आकाश पर सूर्यनारायण ने क्षण भर के लिए मेघों की साँस से अपना लाल-लाल मुख निकाल दिया था । वैसे ही समय में नीलाम्बर घर पहुँचा । पहले-पहल वह सीधे रसोई घर में ही जाकर खड़ा हुआ । भूमि पर उस समय भी आसन बिछा था । गत रात्रि में विराज ने जो भात बनाया था, वह उस समय भी सूखा हुआ पड़ा था । रसोई घर में कहीं चूहे और कहीं छिरकलियाँ दौड़ रहीं थीं । थाली का बहुत सा भात चूहों ने खा डाला था । नीलाम्बर कल रात्रि के अन्धकार में इस ओर नहीं आया था । आज दिन में देखकर वह निश्चित रूप से समझ सका कि यह तुलसी के मोटे

चावलों का भात है। विराज ज्वर से काँपते-काँपते रात्रि के अन्धकार में छिप कर भूखे स्वामी के लिए ये ही चावल भिक्षा के रूप में माँग ले आई है। इन्हीं चावलों के लिए उसने मार खाई है, इन्हीं के कारण अवाच्य और कटु बात सुनकर लज्जा और धिक्कार के मारे वर्षा की भयङ्कर रात्रि में उसने गृहत्याग कर दिया है।

नीलाम्बर वहीं पर बैठ गया। दोनों ही हाथों से मुँह ढक कर वह स्त्री के समान चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगा। विराज जब अभी तक लौटकर नहीं आई थी, तब फिर उसके आने की उसे कोई आशा नहीं रह गई थी। स्त्री को वह पहचानता था। उसे मालूम था कि वह कितनी अभिमानिनी है। प्राण चाहे भले ही निकल जायँ, परन्तु आश्रय ग्रहण करने का इच्छा से दूसरे के घर में जाकर वह अपने आपको कलङ्कित न करेगा, यह बात नीलाम्बर निश्चिन्त रूप से समझता था। यही कारण था कि इतनी शीघ्रता से उसके अन्तःकरण में इस तरह का भयङ्कर हाहाकार उत्पन्न हो आया। भूमि पर वह पेट के बल लोट पड़ा। दोनों ही हाथ सामने की ओर फैला कर वह लगानार यही बात मुँह से बार-बार निकालने लगा—यह मैं न सहन कर सकूँगा विराज, तू आँजा !

साँझ हुई, इस घर में किसी ने दीपक नहीं जलाया। रात्रि हुई, रसोई घर में भोजन बनाने के लिए किसी ने प्रवेश नहीं किया। रोते-रोते नीलाम्बर का मुख ओर उनको आँखें फूल आईं। किसान ने भी उसके आँसू नहीं पोंछे। दो दिनों से वह भूखा था, उसके मुख में अन्न का एक कण भी नहीं गया था। किन्तु किसी ने भी उसे खाने के लिए नहीं बुलाया। बाहर ज़ारों से

पानी बरसने लगा । रात्रि के प्रगाढ़ अन्धकार को विदीर्ण करके बिजली की शिखा उसके मुँदे हुए नेत्रों तक को चकाचौंध करके उसे बार-बार यह सूचित करने लगी कि आज का समय बड़ा भयङ्कर है । किन्तु इतने पर भी नीलाम्बर उठ कर नहीं बैठा ! उसने आँखें भी नहीं खोली । जिस तरह वह पड़ा था, उमी तरह पड़े-पड़े सिसकता रहा ।

नीलाम्बर की निद्रा जिस समय भंग हुई, उस समय सबेरा हो गया था । बाहर की ओर एक अस्पष्ट कोलाहल सुन कर दौड़ता हुआ भीतर से निकल आया । बाहर द्वार पर एक बैलगाड़ी खड़ी थी । व्यग्र भाव से सामने आकर वह जैसे ही खड़ा हुआ, वैसे ही छोटी बहू घूँघट खींचती हुई गाड़ी पर से उतर आई । बड़े भाई की ओर वक्र दृष्टि से एक बार ताक कर पीताम्बर अपने घर की ओर चला गया । छोटी बहू ने जेठ के समीप आकर उसे साष्टाङ्ग प्रणाम किया । नीलाम्बर ने अस्पष्ट स्वर में आशीर्वाद का कोई वाक्य मुँह से निकालने का उद्योग किया, किन्तु वह मुँह में ही रह गया । अकस्मात् भैं-भैं करके वह रो पड़ा । विस्मित होकर छोटी बहू मस्तक उठाने को ही थी कि नीलाम्बर किसी ओर अदृश्य हो गया ।

जीवन में आज यह पहला अवसर था, जबकि छोटी बहू स्वामी की बात का प्रतिवाद करने के लिए त्योरी बदल कर खड़ी हुई थी । आँसुओं के भार से दबे हुए अपने रक्त वर्ण के दोनों ही नेत्र उठाकर उसने कहा—क्या तुम्हारा शरीर पत्थर का बना हुआ है ? दुःख-क्लेश के कारण दीदी ने आत्महत्या कर ली । क्या अब भी हम लोग पराये ही बने रहेंगे ? तुम्हारा अन्तःकरण

यदि ऐसा ही करने को कहता है, तो तुम कर सकते हो परन्तु मैं तो आज से उस घर के भी सारे काम-काज किया करूँगी ।

पीताम्बर चौंक पड़ा—यह कैसी बात है ?

मोहिनी ने तुलसी से जो कुछ सुना था तथा स्वयं उसने जो कुछ अनुमान किया था, वह सब रोते-रोते स्वामी से कहा ।

पीताम्बर आसानी से विश्वास कर लेने वाला आदमी नहीं था । उसने कहा—परन्तु उसकी लाश को तो उतरा आना चाहिए था ।

आँखें पोंछते-पोंछते छोटी बहू ने कहा—लाश का उतराना अनिवार्य नहीं है । सम्भव है कि वे क्रुदते ही धारा में बह गई हों, अथवा सती-लक्ष्मी का शरीर था, माता गङ्गा ने अपनी गोद में ही ले लिया हो । इसके सिवा उनका पता ही किसने लगाया है ? कौन खोज करने के लिए निकला था ?

पत्नी की प्रारम्भ की बातों पर पीताम्बर ने विश्वास नहीं किया । अन्तवाली बात पर उसने विश्वास किया । उसने कहा—अच्छा, मैं उनकी खोज कराता हूँ । ज़रा-सा सोचकर वह बोला—भाभी जी भला अपने मामा के यहाँ तो नहीं चली गई हैं ?

मस्तक हिलाकर मोहिनी ने कहा—वहाँ वे कभी न जायँगी । दीदी जैसे अभिमानी स्वभाव की स्त्री है, उसके कारण वे कहीं नहीं जा सकतीं । इस नदी में ही उन्होंने प्राणत्याग किया होगा ।

“अच्छा, नदी में भी खोज कराता हूँ ।”—यह कह कर सुखा मुँह लिये हुए पीताम्बर बाहर चला गया । भाभी जी के लिए आज एकाएक उसका मन दुःखी हुआ । विराज को खोजने के लिए उसने कई आदमियों को नियुक्त कर दिया । एक आदमी

को विराज के मामा के यहाँ भी मेजा । इस प्रकार पीताम्बर ने जीवन में आज पहले-पहल पुण्य-कार्य किया । स्त्री को पुकार कर उसने कहा—यदु नौकर को बुनाकर आँगन के बीच का बेड़ा तोड़वा डालो और तुम्हारे किये जो कुछ हो, वह करो । अन्त में मुँह में ज़रा-सा गुड़ डालकर पानी पीने के बाद बगल में बस्ता दबाये हुए वह काम पर चला गया । इधर चार-पाँच दिन से उसका बस्ता नहीं खुल सका था, इससे उसे बड़ी हानि हुई ।

घर का काम-काज करते-करते छोटी बहू मोचती रही कि ये जिस मुख की ओर ताक नहीं सके, पता नहीं, वह मुख क्या हो गया ।

नीलाम्बर देवी जी के मन्दिर के बीच में आँखें मूँदे हुए स्तम्भ होकर बैठा था । सामने दीवार पर राधाकृष्ण की युगल मूर्ति का चित्र टँगा हुआ था । यह चित्र क्या जाग्रत था—सजीव था ! जिन दिनों में रेलगाड़ी नहीं थी, उन्हीं दिनों में उसके पितामह पैदल चलकर वृन्दावन गये थे और वहाँ से इसे ले आये थे । वे परम वंशज थे । उनसे यह चित्र मनुष्य के से ही स्वर में बातें किया करता था । नीलाम्बर ने यह इतिहास अपनी माता से कई बार सुना था । उसके लिए देवी-देवता की वस्तु कोई जड़ पदार्थ नहीं थी । जिस तरह उन्हें पुकारना चाहिए, उस तरह पुकारने पर ये सब सामने आकर बातें किया करते हैं, यह बात उसके लिए प्रत्यक्ष सत्य थी । यही कारण था कि नीलाम्बर ने इस चित्र से बातें करने के लिए दूसरों से छिपा कर आज से पहले कई बार कितना उद्योग किया था, कितनी असाध्य साधना की थी, किन्तु वह सफल नहीं हो सका । तो भी नीलाम्बर

को निराशा नहीं हुई। वह बराबर यही अनुभव करता आया कि इस असफलता का कारण मेरी असमर्थता ही है। चित्र में बातें करने की शक्ति नहीं है, इस तरह का संशय उसके हृदय में कभी नहीं उत्पन्न हुआ।

नीलाम्बर पढ़ा-लिखा आदमी नहीं था। किसी प्रकार उसे अक्षर-ज्ञान हो गया था। मातृभाषा में अशुद्ध-फशुद्ध महाभारत पढ़ लेता था और टूटी-फूटी भाषा में चिट्ठी-पत्री भी लिख लिया करता था। शास्त्र या धर्म-सम्बन्धी कोई भी ग्रन्थ उसने कभी नहीं पढ़ा था। इसलिए ईश्वर के सम्बन्ध में उसकी धारणा बहुत मोटे ढङ्ग की थी। परन्तु उसकी जो धारणा थी, उसी को वह पक्की मानता था, किसी की कोई युक्ति या तर्क नहीं सुनता था। इसी प्रकार के तर्क-वितर्क, वाद-विवाद के सिलसिले में छुटपन में उससे कभी पीताम्बर से और कभी विराज से मार-पीट तक हो जाया करती थी।

विराज नीलाम्बर से केवल चार वर्ष की छोटी थी। वह उससे इतना अधिक नहीं डरा करती थी। एक बार नीलाम्बर ने जब विराज को पीट दिया था, तब विराज ने भी उसके पेट में दाँतों से काट लिया था इससे उसके पेट में घाव हो गया था। और उसमें से खून बहने लगा था। उस समय नीलाम्बर की माँ ने इन दोनों ही को छुड़ाया था। बाद को उसने विराज से कहा था कि; बहू, यह तुम्हारा गुरुजन है; इसके इस तरह दाँत से काटना तुम्हारे लिए उचित नहीं है।

उस समय विराज ने रोते-रोते कहा था कि पहले इन्होंने ही मुझे मारा है। तब नीलाम्बर की माता ने पुत्र को बुला कर

कहा था कि तुम आज से इस बात के लिए शपथ कर लो कि भविष्य में विराज के शरीर पर कभी हाथ न छोड़ूँगा। उस समय उसकी अवस्था चौदह वर्ष की थी। आज वह प्रायः तीसवें वर्ष में था। परन्तु मातृभक्त नीलाम्बर ने उस दिन से आज तक माता की आज्ञा का उलङ्घन कभी नहीं किया।

आज जबकि नीलाम्बर हाथ-पैर ममेटे हुए बहुत ही शान्त भाव से बैठा था, तब एकाएक अतीत जीवन की भूली हुई कहानी उसे स्मरण हो आई और उसने पहले अपनी माता की स्वर्गीय आत्मा से क्षमा माँगी। बाद को वह गिड़गिड़ा कर दो-चार सीधे-सादे शब्दों के द्वारा अपने इन सजीव देवता को समझाने लगा। उसने कहा—हे अन्तर्यामी देवता, तुम तो सभी कुछ देख रहे हो। विराज ने जब कोई अपराध नहीं किया है, तब तुम उसके सारे अपराध का भार मेरे ऊपर लाद दो और उसे स्वर्ग में जाने दो, यहाँ पर उसने बहुत से दुःख सहन किये हैं, अब उसे दुःख न देना।

नीलाम्बर के मुँदे हुए नेत्रों की कोर से जल बह रहा था। एकाएक उसका ध्यान भङ्ग हुआ।

“भाई जी !”

नीलाम्बर ने विस्मित होकर देखा कि छोटी बहू समीप ही बैठी हुई है। उसके मुख पर बिलकुल साधारण-सा घूँघट है। स्वाभाविक स्वर में वह बोली—भाई जी ! मैं आपकी कन्या के समान हूँ। भीतर चलकर स्नान कीजिए और ज़रा-सा भोजन कर लीजिए। आपको कुछ खिलाये बिना मैं किसी प्रकार भी न छोड़ूँगी।

नीलाम्बर पहले अवाक् होकर ताकता रह गया । मानो कितने युग बीत गये थे, उसे खाने के लिए किसी ने बुलाया नहीं था । इतने में छोटी बहू फिर बोली—भाई जी, भोजन तैयार हो गया है ।

अब बात नीलाम्बर की समझ में आई । एक बार उसका सारा शरीर काँप उठा ! बाद को पेट के बल वहीं पर लेट कर बह रो पड़ा—भोजन तैयार हो गया है बहू !

गाँव के सभी लोगों ने सुना । सभी लोगों को विश्वास हो गया कि विराज बहू जल में डूब कर मर गई है । इस बात का विश्वास एकमात्र धूर्त पीताम्बर ने नहीं किया । वह मन ही मन विचार करने लगा कि यह नदी इतनी जगह से घूमी हुई है, इसमें इतने अधिक झाड़-भाँखाड़ उगे हुए हैं कि लाश बह कर दूर तक नहीं जा सकती । समीप ही कहीं न कहीं किसी वस्तु में उसका अटक जाना अनिवार्य है । इसीलिए नौका लेकर वह नदी के किनारे-किनारे दूर तक घूम आया । नदी के गर्भ में तथा आस-पास जितनी झाड़ियाँ थीं, उसने उन सब में ध्यानपूर्वक देखा । अन्त में जब लाश का कहीं चिह्न तक नहीं पाया, तब उसे निश्चित रूप से विश्वास हो गया कि भाभी जी ने और चाहे कुछ भी किया हो, किन्तु इस नदी में डूब कर वे नहीं मरी ।

कुछ दिन पहले पीताम्बर के हृदय में एक बात का सन्देह उत्पन्न हुआ था । रह-रह कर वह सन्देह फिर उसके हृदय को उद्वेलित करने लगा । परन्तु पीताम्बर किसी से कुछ नहीं कह सका । एक बार मोहिनी के सामने उसने यह बात छेड़ी थी । परन्तु मोहिनी दाँतों से जीभ दबा कर दो कदम पीछे हट गई

थी । अविश्वाम के स्वर में वह बोली—यदि यह बात सच है तो देवी-देवता भी मिथ्या हैं और दिन-रात भी मिथ्या है । दीवार में टँगे हुए अन्नपूर्णा के चित्र की ओर ताक कर उसने कहा—दीदी उनकी अवतार थीं । यह बात चाहे और कोई जानता हो या न जानता हो, मैं जानती हूँ । इतना कह कर वह चली गई ।

पीताम्बर पत्नी को इस बात से अप्रसन्न नहीं हुआ । उस दिन से अकस्मात् वह ओर तरह का ही मनुष्य हो गया था ।

मोहिनी ने जेठ से बोलना-चालना आरम्भ कर दिया था । उसकी थाली में भोजन परोस कर वह ज़रा-सा आड़ में बैठी और उससे पूछ कर सारी घटना का विवरण आदि से अन्न तक उसने मालूम कर लिया । समस्त संसार में एकमात्र मोहिनी ही यह जान पाई कि केसी घटना हुई है, कैसी मर्मान्तिक व्यथा उनके अन्तःकरण को निरन्तर व्याकुल करती रहती थी ।

नीलाम्बर ने कहा—बहू, मैंने चाहे कितना भी अपराध किया हो, किन्तु जान-बूझ कर नहीं किया । परन्तु पता नहा, किस तरह ममता का परित्याग करके वह चली गई । कदाचित् उससे अब यहाँ का दुःख-क्लेश नहीं सहा जाता था ।

मोहिनी बहुत-सी बातें जानती थी । एक बार उसके मन में आया कह दे कि दीदी एक दिन जाने को कह रही थीं । उसने यह भी बतला देने की इच्छा का कि वे मुझसे यह भी बतला रही थीं कि मेरे प्रति स्वामी का भाव कैसा है । परन्तु वह चुप रह गई ।

पीताम्बर ने लो से पूछा—क्या तुम भैया से बोलती हो ?

मोहिनी ने कहा—हाँ, अब मैं उन्हें पिता के समान मानती हूँ, इसीसे उनसे बोलती हूँ ।

पीताम्बर ने कहा—किन्तु सुनने पर लोग निन्दा करेंगे ।
मोहिनी ने कहा —निन्दा करने के सिवा लोगों के हाथ में
और क्या है ? जिसका जो कार्य है, वह उसे करेगा ही । मैं भी
अपना कार्य करूँगी । इस बार यदि मैं उन्हें किसी प्रकार बचा
पाती तो लोगों की निन्दा का मैं स्वागत ही करती । इतना कह
कर वह अपने कार्य में लग गई ।

पन्द्रह महीने व्यतीत हो चुके थे । कुआर का नवरात्र समीप
था । दुर्गापूजा के समय के आनन्द-उत्सव का आभास जल-स्थल
और वायु-आकाश में सर्वत्र ही व्याप्त था । अपराह्न काल में
नीलाम्बर कम्बल के एक आसन पर स्थिर होकर बैठा था । उसका
शरीर बहुत ही कृश हो गया था । मुख पर ज़रा-ज़रा-सा पीलापन
छाया हुआ था । मस्तक के बाल बढ़ आये थे और वे एक छोटी-
सी जटा के रूप में परिणत हो गये थे । उसके नेत्र वैराग्य और
विश्व-व्यापी करुणा के भाव से ओत-प्रोत थे । महाभारत की
पुस्तक बन्द करके उसने विधवा भयाहू को सम्बोधित किया और
कहा—बहू, पुटी सम्भवतः आज न आ सकेगी ।

छोटी बहू सादा वस्त्र धारण किये हुए थी । उसके शरीर पर
कोई अलङ्कार नहीं था । जेठ के आसन से ज़रा ही दूरी पर बैठ
कर अभी तक वह महाभारत सुन रही थी । उसने कहा—नहीं
भाई जी, अभी समय है । सम्भव है कि वे आ रही हों ।

पुटी का ससुर बहुत ही क्रूर प्रकृति का मनुष्य था । उसकी
मृत्यु हो चुकी थी । इससे आजकल वह स्वाधीन थी । उसके

यहाँ से सूचना आई थी कि वह आज अपने नौकर और नौकरानी को लेकर स्वामी के साथ मायके आवेगी और पूजा तक यहीं रहेगी । अभी तक यहाँ की किसी भी दुर्घटना का कोई हाल उसे मालूम नहीं था । माता के समान स्नेह करनेवाली उसकी बड़ी भाभी घर में नहीं रह गई थी । आज से छः महीना पहले साँप के काटने से उसके छोटे भैया की भी मृत्यु हो गई थी । इन सब में से कोई भी बात आज तक उसके कानों तक नहीं पहुँच पाई थी ।

एक आह भर कर नीलाम्बर ने कहा—यदि वह न आती, तो अच्छा ही था । क्यों बहू, ये सब दुःख क्या एक साथ उससे सहे जायेंगे ?

प्राणों से भी अधिक प्रिय छोटी बहन का स्मरण आ जाने पर आज बहुत दिनों के बाद नीलाम्बर के सूखे हुए नेत्रों में आँसू दिखाई पड़े । जिस दिन रात्रि में पीताम्बर को सर्प ने काटा था, उस दिन बड़े भाई के दोनों ही पैर जोर से पकड़ कर उसने कहा था—मुझे कोई औषधि आदि न चाहिए भैया ! तुम केवल अपने चरणों की धूलि मेरे मस्तक में लगा दो और ज़रा सी मुख में भी डाल दो । इससे यदि मेरे प्राणों की रक्षा हो जाय तो अच्छा ही है, नहीं तो अब जीवित रहने की भी इच्छा मुझे नहीं है । यह कह कर पीताम्बर ने भाड़-फूँक या और हर प्रकार के उपचार करने से अत्यन्त ही प्रबल आग्रह के साथ रोक दिया और बड़े भाई के चरणों के नीचे बार-बार माथा रगड़ने लगा । इस प्रकार विष की ज्वाला से परित्राण पाने की आशा से उसने अन्त तक 'बड़े भाई के चरण नहीं छोड़े थे ।' इस प्रकार छोटे भाई का देहावसान हो जाने पर रोते-रोते पीताम्बर उस दिन जब चुफ

हुआ था; तब से आज ही उसके नेत्रों में आँसू आये थे । सती-साध्वी छोटी बहू ने भी छिपा कर अपने नेत्रों का जल पोछ लिया था । उसने उस समय कोई भी बात मुँह से नहीं निकाली थी ।

नीलाम्बर धीरे-धीरे कहने लगा—इसके लिए भी मैं इतना दुःखी नहीं हूँ बहू । जिस प्रकार हमारे पीताम्बर को भगवान् ने ले लिया था, उसी प्रकार यदि वे विराज को भी ले लिये होते तो आज मेरे लिए ये सुख के दिन होते । परन्तु ऐमा तो हुआ नहीं । पुटी अब बड़ी हो गई है । अब भला-बुरा समझने का ज्ञान उसे हो गया है । ऐसी अवस्था में माता के समान अपनी भावज के कलङ्क का हाल जब वह सुनेगी, तब उसके अन्तःकरण का क्या हाल होगा ! तब तो वह मुग्व उठा कर किसी की ओर ताक भी न सकेगी ।

सुन्दरी आत्मग्लानि सहन करने में समर्थ नहीं हो सकी इससे दो मास पहले नीलाम्बर के सामने जाकर उसने यह स्वीकार किया कि विराज उस दिन रात्रि में नहीं मरी, बल्कि ज़मींदार राजेन्द्र के साथ वह गृहत्याग करके चली गई । विराज के वियोग के कारण नीलाम्बर के मन को इस प्रकार की असीम वेदना हो रही थी कि वह सुन्दरी से देखी नहीं गई । इससे उसके मन में यह बात आई कि वास्तविक बात मालूम हो जाने पर सम्भवतः मालिक के मन में क्रोध का संचार होगा और वे वह दुःख भूल जायेंगे । घर में आकर नीलाम्बर ने यह बात छोटी बहू से भी बतलाई थी ।

आज जेठ के इस विषय की चर्चा करने पर छोटी बहू ज़रा

देर तक चुप रहीं। बाद को उसने कहा—पुटी से यह बात बतलाने की आवश्यकता नहीं है।

“इसे किस तरह छिपाओगी बहू ? जब वह पूछेगी कि बड़ी भाभी कहाँ गईं तब क्या बतलाओगी ?”

छोटी बहू ने कहा—जो बात सब को मालूम है, अर्थात् नदी में डूब कर उन्होंने प्राण-त्याग कर दिया है।

मस्तक हिला कर नीलाम्बर ने कहा—यह बात ठीक नहीं है बहू, मैंने सुना है कि पाप छिपाने से ही बढ़ता है। हम लोग उसके अपने प्राणी हैं। हम लोगों के लिए यह उचित नहीं है कि हम उसके पाप का भार बढ़ावे।

इतना कह कर नीलाम्बर ज़रा-सा हँसा। उसकी उस हँसी में कितनी व्यथा थी, कितनी क्षमा थी, छोटी बहू ने उसे हृदयङ्गम कर लिया। ज़रा देर के बाद छोटी बहू अतिशय संकुचित भाव से धीमे स्वर में बोली—कोई आवश्यक नहीं है कि ये सब बातें सच ही हों भाई जी।

“कौन सब बातें ? तुम्हारी दीदी के सम्बन्ध की ?”

छोटी बहू नीचे की ओर ताकती हुई बैठी रही, उसने मुख नहीं खोला।

नीलाम्बर ने कहा—नहीं बहू ! बात सच ही है। कोई बात झूठी नहीं है। बहू, तुम जानती तो हो कि क्रोध में आने पर उस पगली को ज्ञान नहीं रह जाता था। जब वह नन्हीं-सी बच्ची थी, तब भी उसका वही हाल था, जब बड़ी हो गई तब भी वही हाल रहा। तब पर मैंने उसके साथ जो अत्याचार किया था, उसका

जो अपमान किया था, उसे कदाचित् नारायण भी नहीं सहन कर सकते थे । फिर वह तो मनुष्य ही है ।

इतना कह कर नीलाम्बर ने हाथ से एक बूँद आँसू पोंछ ली । बाद को उसने कहा—जब कभी याद आती है, तब हृदय विदीर्ण हो जाता है बहू । उस बेचारा ने तीन दिन तक कुछ नहीं खाया था । ज्वर के वेग मे काँपते-काँपते मेरे लिए वह ज़रा-सा चावल माँगने गई थी । उसी अपराध के कारण मैंने—

नीलाम्बर का कण्ठ अकस्मात् रुद्ध हो उठा । धोती की छोर मुख में भर कर उच्छ्वसित हो आये हुए रुदन को उसने बलात् रोक लिया और वह फूल-फूल उठने लगा ।

छोटी बहू स्वयं भी उसी तरह रो रही थी । वह भी कुछ नहीं बोली । इसी तरह बहुत-सा समय बीत गया ।

बड़ी देर के बाद नीलाम्बर बहुत कुछ स्वाभाविक अवस्था में आया । आँखें और मुख पोंछ कर वह बोला—तुम्हें बहुत-सी बातें मालूम हैं बहू ! तो भी कुछ बातें बतलाता हूँ । पता नहीं, किस तरह वह उसी रात्रि में शानहीन और उन्मत्त होकर—सुन्दरी के घर पहुँच गई थी । बाद को—हाथ—रूपों के लोभ से सुन्दरी उस पगली को उसी रात्रि में ज़मोदार राजेन्द्र के बजरे पर चढ़ा आई ।

नीलाम्बर की बात समाप्त भी न हो पाई मोहिनी अपने आपको भूल गई । लज्जा और सङ्कोच भूल कर ऊँचे स्वर में वह बोल उठी—यह कभी नहीं सच हो सकता भाई जी; यह कभी नहीं सच हो सकता । जीते जी दीदी से ऐसा कार्य कभी कोई नहीं करवा सकता था । वे तो सुन्दरी का मुँह तक नहीं देखती थीं ।

नोलाम्बर ने शान्त-भाव से कहा—यह भी मैंने सुना है । कदाचित् तुम्हारी ही बात ठीक है बहू ! उसके शरीर में प्राण नहीं थे । उसके हृदय में ज्ञान और बुद्धि का भली-भाँति उन्मेष होने से पहले ही वह अपने प्राण मुझे सौंप चुकी थी । बाद को जाते समय वह लेकर तो नहीं गई थी । आज भी उसके प्राण मेरे पास है ।

यह कह कर नालाम्बर ने अपनी आँखें मूँद लां, और अपने हृदय के अन्तस्तल तक में प्रवेश करके वह खोजने का प्रयत्न करने लगा ।

छोटी बहू मुग्व होकर जेठ के उमी शान्त, पीले पड़ गये मुँदे हुए मुख की ओर ताकती रह गई । उस मुग्व में क्रोध या ईर्ष्या-द्वेष की लेशमात्र भी छाया नहीं थी । थी केवल अपरिमीम व्यथा और अनन्त क्षमा की अनिर्वचनीय महिमा । गले में अञ्जल लपेट कर प्रणाम करने के बाद उनके अनजान में ही उनकी पद-धूलि मस्तक से लगा कर वह चुपचाप उठ गई । मौँझ के समय दीपक जलाते-जलाते मन ही मन उसने कहा—दीदी ने इन्हें पहचान लिया था । इसीलिए वे एक दिन के लिए भी इन्हें नहीं छोड़ना चाहती थीं ।

चार वर्ष के सुदीर्घ समय के बाद पुटी मायके में आई थी । वह ठीक उसी तरह आई थी जिस तरह कि सम्पन्न घरानों की स्त्रियाँ आया करती हैं । साथ में उसके स्वामी थे, गोद में छः महीने का एक बच्चा था और पाँच-छः नौकर और नौकरानियाँ थीं । सामान भी बहुत अधिक था । इस प्रकार सारा घर भर गया था । पुटी को रेलगाड़ी से उतरने के बाद स्टेशन पर ही

यदु नामक नौकर से घर का हाल मालूम हो गया था । इससे वह वहीं से रोने लगी थी । गला फाड़-फाड़ कर रोते-रोते टोले भर को कम्पायमान करके पहर भर रात बीतने पर उसने घर में प्रवेश किया । वहाँ पहुँचते ही भैया की गोद में मस्तक रख कर वह लोट पड़ी । उस दिन रात्रि में पुटी ने होठों से जल तक नहीं लगाया । भैया को भी उसने नहीं छोड़ा । साथ ही मुँह ढके ही ढके एक-एक करके सारी बातें उसने सुन ली । पहले पुटी भाभी को कुछ डरा करती थी । उसके सामने वह कुछ सङ्कोच भी किया करती थी । परन्तु भैया के सामने वह कभी किसी प्रकार का सङ्कोच नहीं करती थी । वह यह भी नहीं अनुभव करती थी कि ये एक पुरुष हैं, इनके सामने मुझे किस तरह की बातें करना चाहिए और किस तरह बैठना-उठना चाहिए । वह तो हर एक बात के लिए भैया के सामने मचल जाया करती थी । जिस दिन वह ससुराल गई थी, उससे एक दिन पहले भी वह भाभी से डाँट खाकर आई थी और भैया का गला पकड़ कर रोते-रोते उसने आँसुओं से घर भर दिया था । उसके इन्हीं भैया को जो लोग इतने दिनों से इतना दुःख देते आये थे, जिन्होंने इन्हें चिन्ता-सागर में डुबो कर इस तरह का जीर्ण-शीर्ण, इस तरह का पागल बना डाला है, उन सब के प्रति पुटी के क्रोध और विद्वेष की सीमा नहीं थी । भैया के इतने बड़े दुःख के सामने अपने दुःख को उसने नितान्त ही तुच्छ कर दिया । अपनी ससुराल के लोगों से पुटी को वृणा हो गई । छोटे भैया जो सर्प के काटने से असमय में ही मृत्यु के मुख में चले गये थे, इसके लिए भी उसके हृदय में कोई वैसा दुःख का भाव नहीं उत्पन्न

हुआ। अपनी दुःखिनी विधवा भावज की ओर से भी पुटी ने एकदम से मुँह फेर लिया।

दो दिन के बाद पुटी ने स्वामी को अपने पास बुलवा कर कहा—मैं भैया को लेकर घूमने के लिए पश्चिम में जाना चाहती हूँ। इससे तुम अपना यह सब दल-बल लेकर घर लौट जाओ। अथवा यदि इच्छा हो तो तुम भी साथ में चले चलो।

बहुत कुछ सोच-विचार करने के उपरान्त पुटी के स्वामी यतीन को यही अन्तिम कार्य अधिक सरल मालूम पड़ा। इसलिए एक बार फिर सामान आदि बँधवाने के लिए उद्योग करने के विचार से वह वहाँ से चल पड़ा। यात्रा का आयोजन होने लगा। पुटी ने एक बार घर के सभी लोगों से छिपा कर सुन्दरी को बुलवाया था। परन्तु वह नहीं आई। जो आदमी उसे बुलाने गया था, उससे उसने कह दिया कि यह मुख मैं अब न दिखा सकूँगी। इसके सिवा मुझे जो कुछ कहना था, वह सब मैं कह चुकी हूँ। मुझे अब और कुछ नहीं कहना है। क्रोध के मारे दाँतों से होठ दबाकर पुटी चुप रह गई।

पुटी की जो इस तरह की अत्यधिक उपेक्षा थी और उससे भी अधिक निष्ठुरतापूर्ण व्यवहार था; उसके कारण छोटी बहू के हृदय की कैसी अवस्था हुई, इस बात को अन्तर्यामी के सिवा और कोई भी नहीं जान पाया। हाथ जोड़कर उसने जेठानी को स्मरण किया और मन ही मन वह कहने लगी—दीदी, तुम्हें छोड़ कर भला और कौन मुझे पहचानेगा ? तुम जहाँ कहीं भी होओ, वहाँ यदि तुमने मुझे क्षमा कर दिया होगा तो वही मेरे लिए सब कुछ है।

छोटी बहू का यह सदा का ही स्वभाव था कि हाथ-पैर समेटे हुए वह मौन-भाव से सदा ही एकान्त में बैठी रहा करती थी। किसी विशेष आवश्यकता के बिना वह बहुधा किसी से बोलती नहीं थी। आज भी नीरव-भाव से सब की सेवा करने लगी। उसने किसी से कुछ नहीं कहा। उसके जेठ को भोजन कराने का भार पुटी ने ले लिया था, इससे इधर कई दिनों से उनके पास बैठना भी छोटी बहू के लिए आवश्यक नहीं हुआ।

यात्रा के लिए जो दिन निश्चित था, उस दिन बहुत ही आश्चर्य में आकर नीलाम्बर ने कहा—क्यों बहू, क्या तुम न चलोगी। छोटी बहू ने चुपचाप मस्तक हिला दिया।

पुटी गोद में बच्चे को लिये हुए अपने भैया के पास आई। वह उनकी और छोटी बहू की बातचीत सुनने लगी।

नीलाम्बर ने कहा—यह नहीं हो सकता। तुम अकेली यहाँ कैसे रहोगी? इसके सिवा यहाँ रह कर करोगी ही क्या? इसलिए बहू, तुम भी चलो।

छोटी बहू वैसे ही अपना झुका हुआ मस्तक हिला कर कहने लगी—नहीं भाई जी, मैं कहीं न जा सकूँगी।

छोटी बहू के मायकेवालों की अवस्था बहुत अच्छी थी। विधवा कन्या को अपने यहाँ ले जाने के लिए उन सब ने कई बार प्रयत्न किया था, किन्तु वह किसी प्रकार भी नहीं गई।

नीलाम्बर उस समय यह सोचा करता था कि वह केवल मेरे ही कारण मायके नहीं जाती है। परन्तु अब वह सूने घर में क्यों पड़ी रहना चाहती है, यह बात किसी प्रकार भी उसकी

समझ में नहीं आ सकी । उसने पूछा—क्यों बहू, भला तुम किस लिए कहीं न जा सकोगी ।

छोटी बहू चुप रह गई ।

“किन्तु बहू, जब तक तुम अपने न चलने का कारण न बताओगी, तब तक मेरा जाना न होगा ।”

छोटी बहू ने धीमे स्वर में कहा—आप जाइए, मैं घर में रहूँ ।
“क्यों ?”

छोटी बहू फिर कुछ क्षण तक मौन रही । परन्तु सङ्कोच के कारण उसमें जो जड़-भाव आ गया था, उसे दूर करने के लिए अपनी समस्त शक्ति लगाकर वह मन ही मन प्रयत्न करने लगी । अन्त में मन स्थिर करके उसने धीमे स्वर में कहा—सम्भव है दीदी किसी दिन आ जायँ । इसीलिए मैं यहाँ से न जा सकूँगी ।

नीलाम्बर दङ्ग रह गया । बिजली के प्रखर प्रकाश के लगने से जिस प्रकार आँखें और मुख झुलस जाता है और आँखें चका-चौंध हो जाने के कारण कहीं कुछ दिखाई नहीं पड़ता, उसी प्रकार नीलाम्बर को भी चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दिखाई पड़ने लगा । किन्तु ऐसा केवल मुहूर्त्त भर के लिए हुआ । मुहूर्त्त भर में ही अपने आपको सँभाल कर ज़रा-सी अत्यन्त ही क्षीण हँसी हँसने के बाद उसने कहा—छिः बहू, यदि तुम भी इस तरह की पागल की-सी बात मुँह से निकालोगी, इस तरह की नासमझ हो जाओगी, तो भला मेरा निर्वाह कैसे होगा ?

आँख की पलक भाँजने में जितना समय लगता है, उतने ही समय में आँखें मूँद कर उसने अपने हृदय में देख लिया । बाद को संशय के लेश से हीन, स्थिर और मृदु स्वर में वह

बोली—मैं नासमझ नहीं हो गई हूँ भाई जी ! आपकी जो इच्छा हो, वही कहें, परन्तु मैं जब तक सूर्य-चन्द्रमा को उदय होते देखूँगी, तब तक किसी की भी बात पर विश्वास न करूँगी ।

भाई-बहन एक दूसरे की बगल में खड़े-खड़े अवाक् होकर-छोटी बहू की ओर देखने लगे । वह वैसे ही दृढ़ कण्ठ से कहने लगी—दीदी ने आपसे यह वर माँग लिया था कि स्वामी के चरणों के समीप मस्तक रखकर मैं प्राणत्याग कर सकूँ । वह वर किसी प्रकार भी निष्फल नहीं हो सकता । मेरी दीदी सती-लक्ष्मी थीं । वे अवश्य लौट आवेंगी, मेरे शरीर में जब तक प्राण रहेंगे, तब तक इस आशा-पथ की ओर दृष्टि लगाये रहूँगी । मुझे यहाँ से कहीं भी जाने को न कहिए भाई जी !

नीलाम्बर से अब न सहा गया । जो रुलाई ठेल-ठेल कर उसके गले तक आ गई थी, उसे निकाल कर बाहर कर देने के विचार से उतावली से पैर बढ़ा कर वह किसी एकान्त-स्थान में चला गया ।

पुटी ने एक बार चारों ओर ध्यान से देखा, बाद को वह छोटी बहू के समीप आ गई । बच्चे को उसने उसके चरणों के समीप बैठा दिया । उसके बाद आज पहले-पहल अपनी इस विधवा भावज के गले से लिपट कर वह रोने लगी । स्पष्ट स्वर में वह बोली—भाभी जी, आज तक मैं तुम्हें कभी पहचान नहीं पाई । मुझे क्षमा करो ।

भुक्कर छोटी बहू ने पुटी के बच्चे को गोद में उठा लिया । उसका मुख चूम कर आँसुओं को छिपाती हुई वह रसोई-घर में चली गई ।

(१८१)

(१४)

विराज के लिए उचित यही था कि वह प्राणत्याग कर देती, परन्तु उसने ऐसा नहीं किया । उसी रात्रि में, जब कि आत्महत्या करने के लिए उसने पूर्णरूप से निश्चय कर लिया था, उससे ठीक मुहूर्त भर पहले मृत्यु का मार्ग छोड़कर उसने सर्वथा विपरीत मार्ग में ही अपने पैर बढ़ा दिये । लगातार बहुत दिनों से दुःख-क्लेश और दरिद्रता से युद्ध करते-करते उसका दुर्बल मस्तिष्क विकृत हो गया । आज तीन दिनों से निराहार रहने के कारण एक तो वह यों ही भूख की ज्वाला से व्याकुल हो रही थी, दूसरे अपमान के असह्य आघात ने उसे और भी व्याकुल कर दिया । इसका फल यह हुआ कि उसके मस्तिष्क का विकार और भी अधिक बढ़ गया और उसने उसे विपथगामिनी कर दिया । मृत्यु को गोद में लेकर जिस समय वह अञ्चल से अपने हाथ-पैर बाँध रही थी, उसी समय किसी स्थान पर बिजली गिरी ! उसकी ज़ोरों की कड़कड़ाहट से चौंक कर जब उसने मुख उठाया, तब उसके तीव्र आलोक में नदी के उस पार स्नान के निमित्त बना हुआ घाट और मछलियाँ पकड़ने के लिए लकड़ी का मचान दिखाई पड़ा । यह घाट और यह मचान मानो इतनी देर से आँखें खोले हुए चुपचाप उसी की प्रतीक्षा कर रहा था । दृष्टि में दृष्टि मिलते ही उन दोनों ने इशारे से विराज को बुला लिया । विराज एकाएक भीषण कण्ठ से बोल उठी—साधु पुरुष मेरे हाथ का जल तक न ग्रहण करेंगे, किन्तु यह पापिष्ठ तो ग्रहण करेगा ! अच्छा है !

लोहार की भट्टी के मुख में डाला हुआ कोयला जिस प्रकार

गर्ज-गर्ज कर राख हो जाता है, विराज के ज्वालामय मस्तिष्क के मुख में ठीक उसी प्रकार उसका अत्यन्त ही मूल्यवान् हृदय जल-भुन कर राख हो गया । विराज स्वामी को भूल गई, धर्म को भूल गई, मृत्यु को भूल गई । जितना भी सम्भव था, उतना अधिक आँखें फाड़-फाड़ कर एक दृष्टि से वह उस पार के घाट की ओर ताकती रही । फिर ज़ोरों की कड़कड़ाहट हुई । अन्धकार में आकाश के वक्षस्थल को चीर कर बिजली चमक उठी । विराज की विस्फारित दृष्टि सङ्कुचित होकर उसी की ओर लौट आई । एक बार मुँह बड़ा कर उसने जल की ओर देखा, एक बार मुँह फेर कर, घर की ओर देखा । अपने हल्के हाथों से उसने जो बन्धन बाँधा था, उसे उसने खोल डाला और निमेष-मात्र के समय में अन्धकारमय वन में वह अदृश्य हो गयी । विराज उस समय इतनी तेज़ी से पैर बढ़ा रही थी कि उसके पैरों की आहट से कितने ही जीव सर-सर, खस-खस करके रास्ते से बगल हो गये, किन्तु उनकी ओर उसका ज़रा सा-ध्यान तक नहीं गया । वह जा रही थी सुन्दरी के पास । भगवान् पञ्चानन्द के पुजारी के यहाँ पूजा की सामग्री भेजने के विचार से वह उसके यहाँ कितने बार गई थी और सुन्दरी का घर देख आई थी । इस गाँव की बहू होने पर भी विराज ने छुटपन में ही इस गाँव के प्रायः सभी रास्तों को पहचान लिया था । इससे ज़रा देर में ही वह सुन्दरी के घर की खिड़की के पास पहुँच गई । खिड़की उस समय भीतर से बन्द थी ।

विराज ने जिस समय सुन्दरी की खिड़की थपथपाई, उससे दो घण्टे के बाद कङ्गाली नामक मल्लाह ने उस पार जाने के

लिए अपनी डोंगी नदी में छोड़ दी । इस प्रकार रात्रि में डोंगी चलाना कङ्गाली के लिए कोई नया काम नहीं था । पैसे के लोभ से इसी तरह रात्रि में वह कितने बार सुन्दरी को पहुँचा आया था । आज विशेषता केवल यह थी कि उसकी डोंगी पर एक के स्थान में दो स्त्रियाँ नीरव-भाव से बैठी थीं । कङ्गाली अन्धकार में विराज का मुख नहीं देख सका । देखने पर वह पहचान भी न पाता । अपने घाट के समीप आने पर दूर से अन्धकारमय तट पर एक लम्बा-सा कोमल शरीर स्पष्ट रूप में विराज ने देखा । उसे देखकर उसने आँखें मूँद ली ।

सुन्दरी ने चुपके-चुपके फिर पूछा—क्यों बहू जी, किसने इस तरह मारा ?

विराज ने अधीर होकर उत्तर दिया—क्यों सुन्दरी, उन्हें छोड़ कर भला और ऐसा कौन-सा व्यक्ति है जो मेरे शरीर पर हाथ छोड़ सके ? यह जानते हुए भी तू बार-बार यह प्रश्न क्यों उठाती है ?

यह सुनकर सुन्दरी लज्जित भाव से चुप रह गई ।

आध घण्टे के बाद एक सजा-सजाया बजरा आया और लङ्गर डालने लगा । विराज ने जैसे ही उस बजरे को लङ्गर डालते देखा, वैसे ही वह बोली—क्यों सुन्दरी, साथ में तू भी जायगी या नहीं ?

“नहीं बहू जी, मैं जब यहाँ न रहूँगी, तब लोगों को सन्देह होगा । तुम जाओ बहू जी, किसी प्रकार का भय नहीं है । हमारी-तुम्हारी मुलाकात फिर होगी ।”

विराज और कुछ नहीं बोली । कङ्गाली की डोंगी पर बैठ कर सुन्दरी घर लौट गई ।

जमींदार का बहुत ही उत्तम ढङ्ग से सजा हुआ बजरा विराज को लेकर तीर के समान दौड़ते-दौड़ते त्रिवेणी की ओर चला ।

नदी में मल्लाह लोग जो ज़ोर-ज़ोर से डाँड़ चला रहे थे, उसके कारण छप-छप शब्द अवश्य होता था, परन्तु सन-सन करके हवा इतने ज़ोरों से थी कि डाँड़ों का शब्द उसी में विलीन होता जा रहा था । राजेन्द्र बजरे के एक किनारे मुख नीचा किये हुए मौन भाव से बैठे-बैठे मदिरा पान करने लगा । उससे कुछ दूरी पर पाषाण की मूर्ति के समान बैठी हुई विराज जल की ओर ताक रही थी । आज राजेन्द्र ने मदिरा बहुत अधिक मात्रा में पान कर ली थी । उसका नशा उसके शरीर के रक्त को उष्ण और मस्तिष्क को उन्मत्तप्राय किये डाल रहा था । बजरा जब सप्तग्राम की सीमा को पार कर गया तब वह उठ कर आया और विराज की बगल में बैठ गया । विराज के रूखे बाल पीठ पर से झूल कर बजरे की फ़र्श पर पड़े हुए थे, मस्तक पर से खिसक कर साड़ी कन्धे पर चली आई थी । इन सब बातों का ज़रा भी ज्ञान उसे नहीं था । कौन आया, कौन बगल में बैठा, इन सब बातों की ओर उसका ज़रा-सा ध्यान तक नहीं जा सका ।

किन्तु राजेन्द्र का यह कैसा हाल हुआ ! अकेले ही किसी भयङ्कर स्थान पर एकाएक आ पहुँचने पर भूत-प्रेत के आतङ्क से मनुष्य का हृदय जिस प्रकार धक-धक करने लगता है, उसी प्रकार विराज की बगल में बैठते ही राजेन्द्र के समस्त हृदय में आतङ्क का तूफ़ान मच गया । वह उसकी ओर ताकता रहा गया । उसे छेड़ कर बातचीत करने का साहस वह नहीं कर सका ।

यह वही रमणी थी, जिसे प्राप्त करने के लिए राजेन्द्र ने असाध्य साधना की थी। वह दो वर्ष तक बराबर उसकी छाया का ही अनुसरण करता रहा है। इस बीच में राजेन्द्र ने सोते-जागते सदा विराज की ही मूर्ति का ध्यान किया है। उसे एक बार आँखों से देख लेने के ही लोभ से आहार-निद्रा भूल कर वह भाड़-भँखाड़ में लगातार कितनी-कितनी देर तक खिपा रहता था। परन्तु जिस बात की वह कभी स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर पाता था, वही बात जब सुन्दरी ने जगाकर राजेन्द्र के कानों में कही, तब भावों के आवेश से वह अभिभूत हो उठा। इस सौभाग्य को वह बड़ी देर तक हृदयङ्गम ही नहीं कर सका।

सामने ही से नदी घूम गई थी। दोनों तटों पर बाँस की कोठियाँ थीं, जिनमें बड़े-बड़े बाँस सघन भाव से लगे हुए थे। पाकर और बरगद के बहुत पुराने-पुराने वृक्ष थे। उन्हीं के बीच से होकर नदी बही हुई थी। स्थान-स्थान पर बाँस की कैचियाँ और वृक्षों की डालियाँ नदी के जल के ऊपर तक झुक आई थीं, जिनके कारण समस्त स्थान अन्धकारमय हो उठा था। बजरे के इस मोड़ पर पहुँचने से पहले ही बड़ी देर के प्रयत्न के बाद राजेन्द्र ने किसी प्रकार साहस का सञ्चय किया। कण्ठ की जड़ता को दूर करके उसने बड़ी कठिनाई से मुख से इतनी बात निकाली— तुम—आप—आप ज़रा देर तक भीतर ही जाकर बैठिए। कहीं शरीर में कोई डाली न लग जाय।

विराज ने मुँह फेर कर राजेन्द्र की ओर देखा। सामने एक छोटा-सा दीपक जल रहा था। उसी के क्षीण आलोक में दोनों

की देखा-देखी हुई। पहले भी वे दोनों एक दूसरे को देख चुके थे। दुरात्मा राजेन्द्र ने पहले दूसरे के अधिकार की भूमि में खड़े-खड़े विराज को देखा था और उस समय उसकी दृष्टि में कोई वैसी बात नहीं थी जिसके कारण उसे सहन करने में वह समर्थ न हो पाता। परन्तु आज राजेन्द्र ऐसे स्थान में था, जो पूर्ण रूप से उसी के अधिकार में था। मदिरा-पान करके उसने अपने आपको उन्मत्त भी कर लिया था। परन्तु फिर भी आज विराज की दृष्टि को सहन करना राजेन्द्र के सामर्थ्य की बात नहीं रह गई थी। एक बार विराज के मुँह की ओर ताक कर उसने अपना मस्तक नीचा कर लिया।

इधर विराज का और ही हाल था। वह राजेन्द्र की ओर ताकतो ही रह गई। आज उसके इतने समीप एक पर-पुरुष बैठा था। परन्तु फिर भी वह अपना मुख ढके हुए नहीं थी। उसके मस्तक पर ज़रा-सा वस्त्र तक नहीं था। इसी बीच में बजरा सघन छाया से ढके हुए भोप में आ गया। नाविकों ने डाँड़ छोड़कर बाँस की कैचियों तथा वृक्षों की टहनियों को व्यग्र भाव से बगल करना आरम्भ किया। नदी का पाट यहाँ पर और स्थानों की अपेक्षा मङ्गोर्ण होने के कारण भाटे का आकर्षण भी बहुत प्रखर था। इससे राजेन्द्र ने ललकार कर मल्लाहों को सावधान होने का आदेश किया। उन सबकी ओर दृष्टि रखकर विराज की ओर ताकते हुए राजेन्द्र ने कहा—भीतर चलिए। यहाँ पर आपको कुछ लग जायगा।

इतना कहकर राजेन्द्र ने कमरे में प्रवेश किया। विराज उस समय मोह से अभिभूत थी। किसी यन्त्र के द्वारा खिंचती

हुई-सी राजेन्द्र के पीछे-पीछे वह भी कमरे में प्रवेश करने लगी । परन्तु भीतर पैर रखते ही “माई री !” कह कर वह चिल्ला उठी ।

विराज की उस चीख से राजेन्द्र चौंक पड़ा । उस समय दीपक के धुँधले प्रकाश में विराज के दोनों ही नेत्र और रक्त से भीगा हुआ माँग का सिन्दूर चामुण्डा के त्रिनेत्र के समान जल उठा था । मदिरा के नशे में चूर वह राजेन्द्र मार खाये हुए कुत्ते की तरह भय की आतुरता से भरा हुआ एक विकृत शब्द मुख से निकाल कर काँपते-काँपते उम ज्योति के सामने से हट गया । अन्धकार में पड़े हुए सर्प के ऊपर मनुष्य जब अकस्मात् पैर रख देता है, तब एकाएक उसके शरीर की शीतलता और चिकनाहट मालूम पड़ते ही वह उछल कर काफ़ी दूर चला जाता है । ठीक उसी प्रकार विराज भी भ्रम से कमरे से निकल आई और बाहर खड़ी हुई । एक बार उसने जल की ओर देखा; बाद को “माई री ! मैंने यह क्या किया ?” इतना कह कर वह अगाध जल में कूद पड़ी ।

मल्लाह लोग भी भय से व्याकुल होकर चीख पड़े । इधर से उधर और उधर से इधर दौड़-दौड़ कर मानो वे बजरे को उलट देने पर उतारू हो गये । परन्तु उनके किये कुछ नहीं हो सका । सब लोग व्याकुल भाव से आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगे, किन्तु रात्रि के दुर्भेद्य अन्धकार में कहीं कुछ दिखाई नहीं पड़ा । राजेन्द्र अवश्य ज़रा भी टस से मस नहीं हो सका । नशा उसका उतर गया था । तो भी वह जहाँ खड़ा था, वहीं खड़ा रहा, बाल भर के लिए भी वह इधर से उधर नहीं हुआ । कुछ समय के बाद पानी के बहाव के कारण बजरा अपने आप तट पर आ गया ।

तब मल्लाह लोग उद्विग्न भाव से राजेन्द्र के पास पहुँचे । डर के मारे उन सब की बिग्वी बँध गई थी । डर के मारे काँपते-काँपते उन सब ने पूछा—बाबू साहब, अब क्या किया जायगा ? क्या पुलिस में रिपोर्ट करनी होगी ? राजेन्द्र भी बिह्वल हो उठा था । मल्लाहों की ओर ताक कर भय कण्ठ से उसने कहा—पुलिस में रिपोर्ट करने की क्या आवश्यकता है ? क्या जेलखाने जाने का शौक लगा है ? गदाई, जिम प्रकार सम्भव हो, यहाँ से भाग चलो ।

गदाई मल्लाह राजेन्द्रकुमार का बहुत पुराना आदमी था । उसे उनका रत्ती-रत्ती हाल मालूम था । इससे अनुमान से मामले को पहले ही उसने बहुत-कुछ समझ लिया था । अब इस तरह का सङ्केत मिलने पर उसकी आँखें खुल गईं । उसने सभी मल्लाहों को एकत्र कर लिया और चुपके-चुपके उन्हें आदेश किया कि बजरा खूब तेज़ी से निकाल ले चलो । उसके साथियों ने भी उसके आदेश का पालन किया । उन सब के प्रयत्न से बजरा बात की बात में उड़ गया ।

कलकत्ता के समीप पहुँच जाने पर राजेन्द्र ने शान्ति की साँस ली । गत रात्रि में आँखों में आँखें मिलने पर राजेन्द्र ने विराज की जो तेजपूर्ण दृष्टि देखी थी, आज दिन में इतनी दूर निकल आने पर भी उसका शरीर थर-थर काँपने लगा । कान घेंठ कर मन ही मन उसने कहा—जीवन में ऐसा कार्य अब कभी न करूँगा । किसके भीतर क्या छिपा है, यह कौन जान सकता है ? उस पगली ने अपनी काल की-सी आँखों से मेरे पिता-पितामह के प्राणों को नहीं सुखा डाला, यही मेरे लिए परम

सौभाग्य की बात थी । भविष्य में फिर कभी इस तरह का कार्य करने का साहस हो सकेगा, ऐसी आशा अब राजेन्द्र को न रही । इतने दिनों तक मूर्ख कुलटाओं के ही फेर में पड़े-पड़े वह मनो-विनोद करता रहा । सती किसे कहते हैं, इस बात का पता उसे नहीं था । आज उस पापिष्ठ के जीवन में पहले-पहल शान का उन्मेष हुआ । केचुल को हाथ में लेकर खेलना सम्भव है, किन्तु सजीव सर्प इतने बड़े ज़मादार के पुत्र के क्रीड़ा की सामग्री नहीं हो सकता ।

(१५)

उस दिन तीसरे पहर जो स्त्री विराज के सिरहाने बैठी थी, उससे पूछने पर विराज को मालूम हुआ कि वह हुगली के अस्पताल में है । बहुत दिनों तक वह बात और कफ के विकार से पीड़ित थी । बाद को जब उसे कुछ चेतना आई तब वह धीरे-धीरे अपने सम्बन्ध की बातों को स्मरण करने का प्रयत्न करने लगी । एक-एक करके उसे बहुत-सी बातें स्मरण भी हो आई ।

एक दिन वर्षा की रात्रि में उसके स्वामी ने उसके सतीत्व के ऊपर आक्षेप किया था । उसका रोग के कारण कृश, उपवास के कारण शिथिल भग्न शरीर, विकल मन उस घोर अपमान को सहन करने में समर्थ नहीं हो सका । बहुत दिनों से दुःख सहन करते-करते एक प्रकार से वह पागल-सी होती जा रही थी । उस दिन अभिमान के वश में आकर, घृणापूर्वक, उसने यह निश्चय कर लिया कि अब इनका मुख न देखूँगी । इससे समस्त बन्धनों को तोड़ कर वह नदी-तट पर चली गई थी और उसने यह

निश्चय किया था कि नदी में डूब कर प्राण-त्याग कर दूँगी । परन्तु वहाँ पहुँच कर वह प्राण-त्याग नहीं कर सकी ।

उसके बाद ज्वर के उन्माद की भोक में ही वह बजरे पर बैठी थी । आधा रास्ता पार कर देने के बाद वह नदी में कूद पड़ी थी और तैर कर तट पर आ गई थी । इस प्रकार भीगे हुए बाल, भीगी हुई साड़ी लिये हुए समस्त रात्रि अकेले ही बैठे-बैठे वह ज्वर से काँपती रही । अन्त में न जाने कैसे वह एक गृहस्थ के द्वार पर पहुँच गई । वहाँ पर वह लेटी थी । विराज को केवल इतना हा स्मरण आता था । उसे वहाँ पर कौन ले आया था, कब ले आया था और उस अवस्था में वह वहाँ पर कितने दिनों से पड़ी थी, इन सब में से कोई भी बात उसे स्मरण नहीं आती थी । इसके सिवा विराज को स्मरण आती थी वह गृह-त्यागिनी कुलटा, जो पर-पुरुष का आश्रय लेकर गाँव से बाहर हो गई थी ।

विराज इसके बाद की घटनाओं पर विचार नहीं कर पाती थी । उन पर विचार करने की उसे इच्छा भी नहीं होती थी । उसके बाद वह क्रमशः स्वास्थ्य-लाभ करने लगी । उठ कर बैठने की शक्ति उसमें आ गई । कुछ ही दिनों में वह धीरे-धीरे टहलने भी लगी । किन्तु भविष्यत् की दृष्टि से अपनी चिन्ता को उसने प्राणपण से विशिष्ट कर रक्खा । वह कैसी घटना थी, इस बात को उसके शरीर का प्रत्येक अणु-परमाणु रात-दिन भीतर ही भीतर अवश्य अनुभव कर रहे थे, किन्तु नाटक का जो पर्दा गिर चुका था, उसके ज़रा से कोने को उठा कर देखने में भी भय के मारे उसका सारा शरीर बर्झ की तरह जम जाता था ।

उसका माथा ठनकने लगता था और उसे मूच्छा-सी मालूम होती थी। एक दिन अगहन के महीने के प्रभात काल में वही स्त्री उसके पास आई और चुपके-चुपके उससे कहने लगी—अब तुम अच्छी हो गई हो, इससे तुम्हें यहाँ से अन्यत्र जाना पड़ेगा। विराज इस बात के उत्तर में “अच्छा” कह कर रह गई।

जिस स्त्री ने विराज को उपर्युक्त प्रकार की सूचना दी थी, वह अस्पताल की नौकरानी थी। उसने यह समझ लिया था कि इस बेचारी के कदाचित् अपना कोई नहीं है। उसने कहा—बुरा न मानना बहन, मैं जानना चाहती हूँ कि जो लोग तुम्हें यहाँ पहुँचा गये थे, वे क्या तुम्हारे कोई आत्मीय नहीं थे ? वे लोग उसके बाद तो तुम्हें देखने के लिए कभी नहीं आये ?

विराज ने कहा—नहीं, मैंने उन्हें आँख से कभी देखा तक नहीं। एक दिन वर्षा-काल में रात्रि के समय मैं त्रिवेणी के समीप जल में डूब गई थी। वे लोग सम्भवतः दयालुता के कारण मुझे यहाँ पहुँचा गये थे।

“ओह ! तुम जल में डूब गई थीं ? तो तुम्हारा घर कहाँ है ?”

अपने नानहाल के ग्राम का नाम लेकर विराज ने कहा—मैं वहीं जाऊँगी। वहाँ मेरे अपने आदमी हैं।

वह स्त्री वृद्ध हो चली थी। विराज के स्वभाव की मधुरता के कारण उसके प्रति उसके हृदय में थोड़ा-सा प्रेमता का भी भाव उत्पन्न हो आया था। दयाद्वर कण्ठ से यह बोली—वहीं जाना बहन। ज़रा सावधानी से रहो, दो ही दिनों में तुम्हारी तबीयत ठीक हो जायगी।

ज़रा सा हँस कर विराज बोली—अब क्या तबीअत अच्छी होगी बहन ! अब न तो यह आँख अच्छी होगी और न यह हाथ ही काम देने लायक होगा ।

बीमारी के बाद उसकी बाई आँख दृष्टिहीन हो गई थी । बायाँ हाथ भी टूट गया था । आँखों में आँसू भरे हुए अस्पताल की नौकरानी ने कहा—नहीं कहा जा सकता बहन, कोई आश्चर्य नहीं कि तुम्हारा हाथ और आँख अच्छी भी हो जाय ।

दूसरे दिन वह स्त्री अपना एक कम्बल और कुछ राह-स्वर्च दे गई । विराज ने उसकी दी हुई वस्तुयें ग्रहण करके उसे नमस्कार किया और वह चलने को उद्यत हुई । परन्तु दो-चार पग चलने के बाद ही लौट कर उसने कहा—मैं एक बार अपना मुख देखना चाहती हूँ । यदि मुझे एक आइना मिल जाता ।

“मिलेगा क्यों नहीं ? मैं अभी लाकर देती हूँ ।” यह कह कर वह स्त्री वहाँ से चली गई और ज़रा ही देर में लौट कर विराज के हाथ पर एक आइना रखकर तुरन्त ही अन्यत्र चली गई । विराज अपनी लोहे की खाट पर जा कर एक बार फिर बैठी । हाथ में आइना लेकर उसने उसे मुँह के सामने कर लिया । इस प्रकार विराज ने जब अपने प्रतिबिम्ब की ओर दृष्टि डाली तब एक अपरिसीम धृष्टा के मारे उसका मुख अपने आप दूसरी ओर फिर गया । आइना फेंक कर उसने बिस्तरे में मुख छिपा लिया । गम्भीर और आर्त-कण्ठ से वह रो पड़ी । उसका मस्तक सफ़ाचट था । आकाश को आच्छादित कर देने वाले मेघों के समान उसके काले-काले बाल कहाँ चले गये थे ? सारे मुख को इस तरह क्षत-विक्षत किसने कर दिया । कमल के समान के

नेत्र कहाँ चले गये थे ? इस तरह का अतुलनीय कच्चे सोने का-सा उसके शरीर का रंग किसने अपहरण कर लिया था ? विराज ने मन ही मन कहा—हा भगवन्, यह कैसा गुरु दण्ड तुमने दिया है ? यदि कभी मुलाकात हो ही जायगी तो यह मुख मैं उनके सामने कैसे दिखाऊँगा ? मनुष्य के शरीर में जब तक प्राण रहते हैं तब तक तो उसकी आशा एकदम से निर्मूल होती नहीं। यही कारण था कि कदाचित् उसको ज़रा-सी अत्यन्त ही क्षीण आशा अन्तःसलिला के समय बहुत ही एकान्त अन्तस्तल में बह रही थी। दयामय ! उस क्षीण आशा को भी सुखा देने को जो तुम उद्यत हो गये, तो इसमें तुम्हें कौन सी लाभ की बात मालूम पड़ी ?

फिर से चेतना लौट आने के बाद विराज रोग-शय्या पर पड़े-पड़े अपने मानस नेत्र से स्वामी का मुख बहुत उज्ज्वल रूप में देखा करती थी। उनके स्वरूप का ध्यान करते-करते किसी-किसी दिन तो उसे एकाएक ऐसा मालूम पड़ता कि उसने जो कुछ किया है, वह तो शानरहित होकर ही किया है। तो क्या अज्ञानता-वश किया गया अपराध क्षमा नहीं हो सकता ? मनुष्य के द्वारा जितने भी पाप होते हैं, उन सभी का प्रायश्चित्त है। तो क्या केवल इसी पाप का प्रायश्चित्त नहीं है ? अन्तर्यामी तो जानते हैं कि उसने मथार्थ में पाप नहीं किया है। तो भी थोड़ा-बहुत जो कुछ कर डाला है, वह इतने दिनों तक उसके द्वारा की गई स्वामी की सेवा के प्रभाव से नष्ट न हो जायगा ?

विराज किसी-किसी दिन कहा करती थी कि उनके मन में तो कभी क्रोध का भाव नहीं रहता। यदि मैं एकाएक जाकर

उनके चरणों पर गिर पड़ूँ, और उनसे मारी बातें स्पष्ट शब्दों में कह दूँ, तो मेरे मुख की ओर ताक कर भला वे क्या करेंगे ? ऐसी परिस्थिति में उसके स्वामी क्या कर सकते हैं, इस कल्पना के चित्र को कितन रंगों से अपने मानम-पट पर अङ्कित करके देखने के लिए वह रात की रात जागते-जागते ही काट दिया करती थी । इस सम्बन्ध में विचार करते-करते जब उसे निद्रा आ जाती, तब वह उठ कर जाती, ओख-मुँह धो आती और फिर बैठ कर बिलकुल नये ढङ्ग से विचार करने लगती । हॉ भगवन्, तुमने उसके इस विचित्र चित्र को दोनों पैरों से रौंद कर क्यों तोड़-मोड़ डाला ? आज यदि वह अपने स्वामी के पास जाय भी और उनके दानों ही चरणों पर मस्तक रख कर पेट के बल लोट जाय तो क्या लज्जा के मारे मुख उठा कर उनकी आर ताकने का साहस उसे हा सकेगा ?

अस्पताल के उस कमरे में एक और रोगिणी थी । विराज को इस तरह रोती देख कर वह उठ आई और विस्मित भाव से बोली—क्या हुआ जी, तुम क्यों रोती हो ?

हाय रे, और एक व्यक्ति को विराज के रोने का कारण जानने के लिए उत्सुकता है ।

विराज ने उतावली के साथ ओखे पोछ डाली और किसी ओर न ताक कर धीरे-धीरे वह कमरे से निकल गई ।

वह पहला दिन था जबकि विराज ने अपनी उद्देश्यहीन यात्रा के लिए सड़क के एक किनारे पर पैर रक्खा । उस सड़क से होकर अगणित मनुष्य आ-जा रहे थे । उनके पैरों की आहट, उनकी बातचीत के शब्दों तथा सवारियों की घड़घड़ाहट से वहाँ

का वायु-मण्डल मुखरित था। उसी भीड़ से भरी हुई और कोला-हलपूर्ण सड़क की पटरी पर विराज अपने अम्यास-रहित और क्लान्त चरणों को घसीटने लगी। उस समय विराज के वक्ष-स्थल को चीरती हुई, एक लम्बी साँस निकल गई। मन ही मन वह बोली—भगवन्, तुमने यह अच्छा ही किया है। मेरी ओर अब किसी की दृष्टि न लगेगी। यह मुख, ये आँखें कदाचित् इस यात्रा के ही लिए उपयुक्त हैं, इस कारण ये इस रूप में बना दी गई हैं ! गाँव के लोगों को मेरे सम्बन्ध में यही मालूम है कि मैं गृहत्यागिनी कुलटा हूँ। इसीलिए इस बात की रुकावट हो गई कि यह मुँह खोल कर मैं गाँव वालों की ओर न देख सकूँ, अपने स्वामी की ओर न देख सकूँ। इसलिए मेरे मुख को अब कदाचित् इसी रूप में परिवर्तित कर देना आवश्यक था। ऐसी अवस्था में, हे भगवान्, तुमने जो कुछ किया है, वह मङ्गल के ही लिए किया है।

मन ही मन इस प्रकार भगवान् को धन्यवाद देकर विराज चलने लगी।

कितने दिन व्यतीत हो चुके थे। विराज पहले गई थी दासी-वृत्ति करने के लिए, किन्तु उमका निर्बल और रोगी शरीर उस वृत्ति को चलाने में असमर्थ सिद्ध हुआ। जिसके यहाँ उसने नौकरी की थी, उसने उसे निकाल दिया। तब भिक्षा का आश्रय ग्रहण करने के लिए वह बाध्य हुई। वह घर-घर भिक्षा माँगती फिरती थी। और उसे जो कुछ मिल जाता, उसे किसी वृद्ध की छाया में सिद्ध करके वह खा लेती। रात्रि में वह वृद्ध की ही छाया में

सोया भी करती थी। उसके इस वर्त्तमान जीवन में अतीत का लेशमात्र भी चिह्न नहीं विद्यमान था। आजकल जो साड़ी वह पहनती थी, उसमें सैकड़ों छेद थे। मस्तक पर छोटे-छोटे बाल थे, जो उलभे हुए थे। एक मैली-सी कथरी किसी दयालु पुरुष ने कृपा करके दे दी थी, उमी को वह ओढ़ लिया करती थी। जैसे निर्बल और स्वास्थ्य तथा सौन्दर्य से हीन उसका शरीर था, वैसे ही वह मैले-कुचैले तथा फटे-पुराने वस्त्र भी पहनती थी। परन्तु उसकी अवस्था अभी कुल पचीस वर्ष की थी।

एक वह भी दिन था, जब कि विराज की-सी सुन्दरी स्त्री भू-मण्डल में कदाचित् ही कहीं देखने में आती थी। भगवान् उसे अतीत से छीन ले आये और उसके पुराने रूप को बिगाड़ कर उसे बिलकुल नये ही रूप में गढ़ दिया। वह स्वयं भी अपनी उस पुरानी अवस्था को भूल गई थी। केवल दो बातें उसे अभी तक नहीं भूली थीं। किसी से कुछ याच्ना करते समय उसकी लज्जा की सीमा नहीं रहती थी। यद्यपि वह आजकल भिक्षा के ही आधार पर जीवन-निर्वाह करने के लिए बाध्य थी। किन्तु तो भी भिक्षा माँगते समय कण्ठ से वह स्पष्ट शब्द उच्चारण नहीं कर पाती थी। इसके सिवा वह यह बात नहीं भूल सकी थी कि मुझे बहुत दूर जाकर मरना होगा। मृत्यु का वह स्थान किस देशान्तर में है, यह उसे अवश्य नहीं मालूम था, किन्तु इतना उसे अवश्य मालूम था कि उस सुदूर स्थान पर पहुँचने के ही लिए मैं निरन्तर इतना लम्बा रास्ता तय करती रहती हूँ। विराज ने निश्चय किया था कि अपनी यह अवस्था मैं किसी प्रकार भी अपने स्वामी को ऋद्धिगोचर न होने दूँगी। मैंने चाहे कितना ही घोर से घोर अप-

राध क्यों न किया हो, किन्तु जब वे मेरी यह अवस्था अपनी आँखों से देखेंगे, तब उनका हृदय विदीर्ण हुए बिना न रहेगा, यह बात वह मुहूर्त्त भर के लिए भी भूल नहीं सकी। इसीलिए वह निरन्तर दूर चली जा रही थी।

विराज एक वर्ष बराबर आगे बढ़ती जा रही थी। परन्तु उसका वह गन्तव्य स्थान कहाँ था ? वह कौन-सा स्थान था, जहाँ भूमि के ऊपर लज्जा के आघात से टूटा हुआ यह सन्तप्त मस्तक रखकर इस लाञ्छित जीवन को नीरव भाव से समाप्त कर पावेगी ? आज दो दिनों से वह एक वृक्ष के नीचे पड़ी थी। वहाँ से वह उठ नहीं सकी। धीरे-धीरे रोगों ने फिर उसके ऊपर धावा बोल दिया—खाँसी आती थी ज्वर होता था। छाती में पीड़ा होती थी। एक तो पहले से ही उसका शरीर बहुत निर्बल हो गया था। उस अवस्था में सांघातिक भाव से रुखा होकर वह अस्पताल में भर्ती हुई थी। आरोग्य भी न हो पाई थी कि उसे वहाँ से निकल आना पड़ा। उसके बाद ही उसने एक लम्बा रास्ता तय करने का निश्चय कर लिया। कभी वह आधा पेट भोजन पाती, कभी ज़रा-सा जलपान ही करके रह जाती और कभी एकदम से निराहार रह जाती। इस अवस्था में भी उसे कस कर चलना पड़ता। पहले उसका शरीर बहुत तगड़ा था। इसी से वह अभी तक टिकी थी। परन्तु अब अधिक समय तक चल सकने की सम्भावना नहीं रह गई। आज आँखें मूँदे हुए वह सोच रही थी तो क्या इस वृक्ष के नीचे की भूमि ही मेरा वह गन्तव्य स्थान है। तो क्या यहीं तक पहुँचने के लिए मैं अब तक निरन्तर भटकती आ रही हूँ, इतने

दिनों से पैर घिसते-घिसते परेशान हो गई हूँ ! क्या मैं अब उठ न सकूँगी !

दिन व्यतीत होगया । वृत्त की सबसे ऊँची चोटी पर से हट कर अस्ताचल पर वर्तमान सूर्य की अन्तिम ललिमा न जाने कहाँ चली गई । गाँव में सन्ध्याकाल में आरती के समय जो शङ्खध्वनि हो रही थी, वह हवा के साथ उड़कर आई और विराज के कानों में प्रविष्ट होने लगी । साथ ही साथ उसके मुँदे हुए नेत्रों के सम्मुख अपरिचित गृहस्थ बंधुओं की शान्त एवं मङ्गल मूर्त्तियाँ उदित हो आईं । इस समय किस कुल-कमला के हाथ में कौन-सा कार्य है, कौन किस प्रकार दीपक जला रही है, कौन हाथ में दीपक लिए हुए कहाँ-कहाँ उजाला दिखलाती फिर रही है, कौन अब गले में अञ्जल लपेट कर देवता को नमस्कार कर रही है, कौन तुलसी की वेदी के समीप दीपक रखकर देवता के चरणों में कौन-सी कामना निवेदन कर रही है । यह समस्त वह अपने नेत्रों से देखने लगी, कानों से सुनने लगी । आज बहुत दिनों के बाद उसके नेत्रों में जल आया । मानों कितने ही हज़ार वर्ष बीत चुके थे, जब से विराज किसी भी गृह में दीपक नहीं जला पाई, किसी का भी मुख स्मरण करके उसकी आयु और आरोग्यता की वृद्धि के लिए देवता के चरणों में प्रार्थना नहीं कर सकी । इन समस्त भावनाओं को वह प्राण-पण से अपने हृदय से दूर रखती आई थी । परन्तु अब वह इस विषय में सफल नहीं हो सकी । शङ्ख के आह्वान से उसका क्षुब्ध, तृषित हृदय, कोई भी निषेध न मान कर गृहस्थ बंधुओं के बीच में जा खड़ा हुआ । उसके मानस-नेत्र के सम्मुख प्रत्येक घर, प्रत्येक द्वार, प्रत्येक

आँगन, प्रत्येक तुलसी के चबूतरे, प्रत्येक दीपक, तक एक हो गये थे । विराज अनुभव कर रही थी कि ये सभी तो मेरे पहचाने हुए हैं । इस समय तो इन सभी में मेरे ही हाथ का चिह्न दिखाई पड़ रहा है । इससे अब उसका दुःख न रह गया । अब उसकी लुधा-तृष्णा न रह गई ! पीड़ा की यातना भी नहीं रह गई ! वह तन्मय होकर मन ही मन निरन्तर कुल-बंधुओं का अनुसरण करती रही । जब वे भोजन बनाने के लिए रसोई घर में गईं तब उनके साथ वह भी गई । रसोई तैयार हो जाने पर उन सब ने जब अपने-अपने स्वामी की थाली में भोजन परोसा, तब आँखें फाड़-फाड़ कर उसने देखा ! अन्त में समस्त प्रकार के काम-काज से अवकाश प्राप्त करके काफ़ी अधिक रात्रि व्यतीत हो जाने पर वे सब जब निद्रा में मग्न स्वामी की शय्या के पास खड़ी हुईं, तब वह भी स्वामी की शय्या के समीप खड़ी होने के लिए गई । किन्तु वहाँ जाने पर वह एकाएक काँप उठी । विराज ने अनुभव किया कि ये तो मेरे ही स्वामी हैं । आँखों की पलकें गिराये बिना ही एकदृष्टि से निद्रा में मग्न स्वामी की ओर ताकते-ताकते उसने रात्रि व्यतीत कर दा । गृह का परित्याग करके वह जिस दिन निकली थी, उस दिन से किसी भी रात्रि में इस प्रकार वह उनके समीप नहीं आई ।

विराज मन ही मन कहने लगी—आज मेरे भाग्य में यह कैसा अपरिमीम सुख बढ़ा था । निद्रा में, जागरण की अवस्था में, तन्द्रा में, सुषुप्ति में इन प्रकार की अनुभूति प्राप्त करते हुए कितने सुख के साथ रात्रि व्यतीत कर रही हूँ !

चञ्चल होकर विराज उठ कर बैठ गई । पूर्व का आकाश

उस समय भी स्वच्छ नहीं हो पाया था । उस समय भी बूसर वर्ष की ज्योत्सना वृक्षों की डालियों और पत्तियों की साँसों से छन-छन कर चारों ओर फैली थी, मानो हरिश्चन्द्र के फूल वृक्षों से झड़-झड़ कर चारों ओर बिखरे हुए हों । वह सोच रही थी कि यदि मैंने सतीत्व की मर्यादा को भंग कर दिया है, तब उन्होंने मुझे आज इस तरह दर्शन क्यों दिया ? क्या वे मुझे यही सूचित करने के उद्देश्य से मेरे मानस-नेत्रों के समक्ष आये थे कि अब मेरे पाप का प्रायश्चित्त हो गया है ? तब तो क्षण भर का भी विलम्ब मुझे कहीं न करना चाहिए ।

विराज उत्कण्ठित हो कर प्रातःकाल की प्रतीक्षा करने लगी । आज की रात्रि एकाएक उसकी आवरण में बँधी हुई दृष्टि को जोर से उद्घाटित करके समस्त हृदय को आनन्द और माधुर्य से परिपूर्ण कर गई । विराज ने मन ही मन कहा—कभी मुलाकात हो सके या न हो सके, अब तो कोई भी, मुहूर्त भर के लिए मुझे स्वामी से दूर न रख सकेगा ! स्वामी को प्राप्त करने का यह एक मार्ग था, किन्तु फिर भी निरर्थक ही इतने दिनों तक स्वामी के वियोग का दुःख सहन करती रही हूँ । यह सोच कर विराज बहुत दुःख का अनुभव करने लगी । उसकी यह दृष्टि हृदय में बार-बार शूल की तरह गड़ने लगी । आज न जाने क्यों उसे निश्चित रूप से विश्वास हो गया कि वे मुझे बुला रहे हैं ।

विराज दृढ़कण्ठ से बोली—ठीक तो है ! वह शरीर क्या मेरा अपना है जो उनकी अनुमति के बिना मैं इसे इस तरह नष्ट किये डाल रही हूँ ! मैंने अपराध किया है, या निरपराध हूँ, इस बात का निर्णय करने का अधिकार मुझे नहीं है, उन्हें है । जो

कुछ करना होगा, वे ही करेंगे। सारी बातें उनके चरणों में निवेदन करके मैं लुट्टी ले लूँगी।

यह सोचकर विराज लौट पड़ी। आज उसका शरीर बहुत हल्का था। जो पैर उठाकर वह आगे की ओर रखती थी, वह मानो बड़ी कठोर भूमि पर पड़ रहा था। उसे लेशमात्र भी ग्लानि नहीं थी। चलते-चलते वह बार-बार यही बात मुँह से निकालने लगी—मुझसे यह कैसी भयङ्कर भूल हुई है। यह कैसा अहङ्कार मेरे अन्तःकरण में समाया हुआ था। अपना यह कुरूप कुत्सित मुख लिये हुए विश्वब्रह्माण्ड के सम्मुख निकलने में मैंने लज्जा का अनुभव नहीं किया। इसे केवल उनके सम्मुख प्रकट करने में लज्जा का अनुभव किया, एकमात्र जिनके सम्मुख इसे प्रकट करने का मेरा अधिकार नौ वर्ष की ही अवस्था में विधाता ने स्वयं निर्दिष्ट कर दिया है।

(१७)

पुटी मैया को क्षण भर के लिए भी अवकाश नहीं देती थी। पूजा के समय जब वह आई थी तब से पौष की संक्रान्ति तक क्रमशः एक नगर से दूसरे नगर में और एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ में उसे घुमाती रही। पुटी की अभी नई अवस्था थी, उसका शरीर स्वस्थ और सबल था, साथ ही उसका कौतूहल भी असीम था। उसके समान तीव्र गति से निरन्तर भ्रमण करते रहना नीलाम्बर की शक्ति से परे था। वह थक कर चूर हो गया था। परन्तु उसे इस बात की भी इच्छा नहीं हो रही थी कि वह कहीं बैठ कर ज़रा-सा विश्राम ग्रहण कर ले। उसका समस्त शरीर घर की ओर दृष्टि लगाये-लगाये रात-दिन भागूँ-भागूँ कर रहा था।

उसका भार से अक्रान्त मन देश को लौट चलने के लिए रात-दिन अपनी आकांक्षा प्रकट कर रहा था, परन्तु उसकी इस उत्कण्ठा का कारण क्या है, यह भी उसको समझ में नहीं आ रहा था ? क्या था देश में ? इस तरह के स्वास्थ्यकर स्थान में भी भला उसका मन क्यों नहीं लग रहा था ? छोटी बहू बीच-बीच में पुटी को चिट्ठी लिखा करती थी, परन्तु वह भी कोई वैसी बात नहीं लिखा करती थी । तो भी उस उजाड़ गाँव की ओर नालाम्बर का मन निरन्तर इस तरह आकर्षित होता रहता था कि उसके कारण उसका सूखा हुआ शरीर उत्तरोत्तर कङ्कालमय होता जा रहा था ।

पुटी की इच्छा थी कि मैसा को मारी बातें भूल जायँ और वे फिर पहले की ही तरह चिन्ता-रहित होकर हृष्ट-पुष्ट हो जायँ । उनके मुख पर जो मुस्कराहट सदा वर्तमान रहा करती थी, वह फिर लौट आवे । पहले की ही तरह फिर उनके मुख में सदा गीत वर्तमान रहने लगे और पहले उनका जो हँसों का भाण्डार बराबर पूर्ण रहा करता था, वह फिर वसा का वैसा हो जाय और वे पहले की तरह कारण-अकारण से खिन्न-खिन्नाने लगें । किन्तु मैसा पुटी के सारे प्रयत्नों को निष्फल कर डालने पर तुले हुए थे ।

पुटी की पहले ऐसा धारणा नहीं थी । वह निराश नहीं हुई थी । वह सोचा करती थी कि और दो दिन इसी तरह बिता दिये जायँ । परन्तु दो ही दो दिन करते-करते चार-पाँच महीने बीत गये, किन्तु नालाम्बर में किसी प्रकार का भी परिवर्तन नहीं दिखाई पड़ा । इससे पुटी की चिन्ता की सीमा न रही ।

ये लोग भ्रमण के लिए जिस दिन घर से निकलने को थे,

उस दिन मोहिनी की बातों तथा उसके व्यवहार से नीलाम्बर में विराज के प्रति एक करुणा का भाव उदित हुआ था । विराज के सम्बन्ध में मोहिनी ने जो कुछ कहा था, उस पर उसने विश्वास भी किया था । इससे पुटी को आशा हुई थी कि भैया की तबी-अत जब अच्छी हो जायगी तब छुटपन की बातों को स्मरण करके वे भाभी जी को मन ही मन कदाचित् क्षमा भी कर देंगे । पुटी स्वयं इस बात के लिए व्याकुल थी कि वह कोई ऐसा अवसर खोज निकाले जब भैया के सामने अपनी भाभी का कोई मधुर प्रसङ्ग छेड़ कर उसके प्रति उनके हृदय में क्षमा का भाव उत्पन्न करे । परन्तु ऐसा अनुकूल अवसर उसे मिल ही नहीं रहा था ! उसके भैया का शरीर अच्छा ही नहीं हो रहा था !

पुटी इस बात की कल्पना तक नहीं कर पाती थी कि संसार में ऐसा कौन-सा दुःख हो सकता है, ऐसा कौन-सा कारण हो सकता है, जिससे परेशान होकर कोई व्यक्ति इस मनुष्य को ऐसे घोर सङ्कट में छोड़कर स्वयं बगल हो जायगा । भाभी चाहे अच्छी था, या बुरी थी इस ओर पुटी का ज़रा भी ध्यान नहीं था । किन्तु स्वामी का परित्याग करके जो वे चली गई, पुटी की दृष्टि में यह उनका बहुत बड़ा अपराध था और उन्होंने जो ऐसा घोर अपराध किया था, उसके कारण उसके प्रति पुटी के विद्वेष की सीमा नहीं थी । परन्तु अपनी उसी हतभागिनी भाभी को प्रतिदिन ही स्मरण करते-करते वह उसके वियोग की व्यथा को मन ही मन इस तरह पोषण प्रदान करने लगी कि जो मनुष्य अपने शरीर को जलाये डाल रहा था, उसके प्रति भी उसका चित्त प्रमत्त नहीं हो सका !

एक दिन प्रातःकाल मुँह फुलावे हुए पुटी आई और कहने लगी—भैया, चलो, अब घर चलें ।

नीलाम्बर कुछ विस्मित-सा हो कर बह्म के मुख की ओर ताकने लगा । कारण, माघ के अन्त तक प्रयाग में ही वास करने का निश्चय हुआ था ।

भाई के मन का भाव ताड़ कर पुटी बोली—अब मैं यहाँ एक दिन भी नहीं रहना चाहती । यहाँ से कल ही यात्रा कर देनी चाहिए ।

नीलाम्बर ने देखा कि पुटी की आकृति पर रोष का भाव उदित हो आया है । इससे उसे शान्त करने के विचार से ज़रा-सा विषाद के भाव से वह बोला—क्यों री पुटी ! अभी ही घर क्यों चलना होगा ?

पुटी ने ज़ोर करके नेत्रों का जल अभी तक रोक रक्खा था । अब वह रो पड़ी । आँसुओं के कारण विकृत हो गये कण्ठ से वह बोली—यहाँ रहने से लाभ क्या होगा ? तुम्हारी तबीअत यहाँ लग नहीं रही है । घर चलने के लिए तुम्हारे मन में बराबर ही उत्कण्ठा बनी रहती है, इस कारण तुम दिन-दिन सूखते ही जा रहे हो ! मैं किसी प्रकार भी यहाँ न रुक सकूँगी । यहाँ रुकना मुझे एक दिन भी सह्य नहीं है ।

नीलाम्बर ने स्नेहपूर्वक पुटी का हाथ पकड़ कर उसे अपने पास बैठाया । उसने कहा—क्यों री पुटी ! लौट कर घर पहुँच जाने पर क्या मेरी तबीअत अच्छी ही हो जावगी ? बहन, मुझे तो इस बात का भरोसा नहीं होता कि यह शरीर फिर आरोग्य हो पावेगा । परन्तु यदि तुम्हारी इच्छा है तो चलो, घर ही चलें ! जो कुछ होने को है, वह घर पहुँचने पर ही हो ।

बड़े भाई की यह बात सुन कर पुटी ज़ोर से रो पड़ी। रोते-रोते उसने कहा—मैया, भला तुम सदा उन्हीं की चिन्ता में क्यों पड़े रहते हो ? निरन्तर चिन्ता ही करते-करते तो तुम्हारा इस तरह का हाल हो गया है !

“किसने कहा कि मैं निरन्तर उसी की चिन्ता में पड़ा रहता हूँ ?”

पुटी ने वैसे ही तपाक से जवाब दिया—कहेगा कौन ! मैं स्वयं जानती हूँ ।

“क्या तू उसे याद नहीं करती ?”

आँखें पोंछ कर पुटी ने उद्धत भाव से कहा—नहीं। मैं उसे याद नहीं करती। उसे याद करने से पाप होता है।

नीलाम्बर चौंक पड़ा। वह बोला—क्या होता है ?

“पाप होता है उसका नाम मुख पर आने देने से मुख अशुद्ध हो जाता है। उसे स्मरण करने से स्नान करना पड़ता है।”—यह कह कर पुटी ने देखा कि मैया की स्नेह से कोमल दृष्टि निमेष भर में ही परिवर्तित हो गई है। बहन के मुख की ओर ताकते हुए नीलाम्बर ने कठोर स्वर में कहा—पुटी !

भाई के इस प्रकार के आह्वान से पुटी भयभीत और कुण्ठित हो उठी ! वह मैया की बड़ी दुसारी बहन थी। छुटपन में लाख अपराध करने पर भी मैया की इस तरह की आँखें पुटी ने कभी नहीं देखीं, इस तरह का कण्ठ-स्वर उसने कभी नहीं सुना। आज बड़ी होने पर डॉट खा कर क्षोभ और अभिमान के मारे उसका मस्तक नीचा हो गया। और कुछ भी न कह कर पुटी उठ गई। अञ्चल से आँखें ढक कर वह सिसक-सिसक कर रोने लगी।

दोपहर को भोजन के समय पुटी मैया के समीप नहीं गई। साँझ को भी खाद्य-सामग्री दासी के हाथ भेज कर वह स्वयं आड़ में खड़ी रही।

नीलाम्बर ने पुटी को नहीं पुकारा। वह कुछ नहीं बोला।

साँझ का समय बीत गया था। नीलाम्बर सायङ्काल की सन्ध्या समाप्त करके उसी आसन पर चुपचाप बैठा था। पुटी नीरव भाव से उम कमरे में प्रविष्ट हुई। वह पीछे जाकर घुटनों के बल बैठी। मैया की पीठ में उसने मुख छिपा लिया। पुटी का यह नालिश करने का ढंग था। छुटपन में अपराध करके भावज से मार खाने के बाद वह इसी प्रकार शिकायत किया करती थी। नीलाम्बर को एकाएक वह बात स्मरण हो आई। इससे उसके दोनों ही नेत्रों में आँसू भर आये। बहन के मस्तक पर हाथ रख कर कोमल स्वर में वह बोला—क्या है री !

पुटी ने पीठ छोड़ दी। मैया की गोद में पेट के बल लेट कर मुँह छिपाये हुए वह रोने लगी। उसके मस्तक पर एक हाथ रखे हुए नीलाम्बर चुपचाप बैठा रहा। बड़ी देर के बाद आँसुओं से रुँधे हुए स्वर में पुटी ने कहा—अब ऐसा कभी न कहूँगी मैया !

पुटी के बालों के बीच में उँगलियाँ फेरते-फेरते नीलाम्बर ने कहा—नहीं, अब न कहना।

पुटी चुप होकर पड़ी रही। उसके मन की बात समझ कर नीलाम्बर ने कोमल स्वर में कहा—वह तेरी गुरुजन है।—केवल भावज होने के ही नाते नहीं पुटी ! उसने माता के ही समान पालन-पोषण करके तुझे मनुष्य बनाया है। इससे वह तेरी माता के ही समान हो गई है। दूसरे, आदमी चाहे कुछ भी कहें, किन्तु

यदि तू इस तरह की बात मुँह से निकालेगी तो यह तेरा बहुत बड़ा अपराध होगा ।

आँखें पोंछते-पोंछते पुटी बोली—वह क्यों' इस तरह हम लोगों को छोड़ कर चली गई ?

“वह क्यों चली गई पुटी, यह बात या तो मैं जानता हूँ या वे जानते हैं जो सब के अन्तर्यामी हैं । वह स्वयं भी नहीं जानती थी । वह उस समय पागल हो गई थी । उस समय यदि वह ज़रा भी सचेत होती तो आत्महत्या ही करती, इस तरह का कार्य न करती ।

पुटी ने एक बार फिर आँखें पोंछ लीं । आँसुओं से रुँधे हुए स्वर में उसने कहा—किन्तु—अब—तो अब वे क्यों नहीं लौट आतीं भैया ।

“क्यों नहीं आती ? आने का कोई उपाय नहीं है, इसीलिए वह नहीं आती बहन !” यह कह कर ज़ोर करके उसने अपने आपको संवरण कर लिया । क्षण भर के बाद ही वह बोला—जिस अवस्था में वह मुझे छोड़ कर गई है, उसके कारण यदि ज़रा भी लौटने का उपाय होता तो वह लौट आती, वह कहीं एक दिन भी न रुकती ।

मुख ढके ही हुए पुटी ने मस्तक हिला कर कहा—शायद भैया !

नीलाम्बर उद्दीप्त होकर बोला—यही बात ठीक है बहन, वह आना चाहती है, परन्तु नहीं आ पाती । यह कितना कठोर दण्ड है पुटी, इस बात को तुम लोग नहीं अनुभव कर पाती हो, किन्तु आँखें मूँद लेने पर ही मैं इसे अनुभव कर लिया करता हूँ । इस

तरह का अनुभव करना ही निम्ब-नित्य मेरे शरीर को क्षीण किये डालता है री पुटी, और कुछ नहीं ।

पुटी रो पड़ी ।

नीलाम्बर ने हाथ से आँखें पोंछ लीं । बाद को वह बोला—
कभी-कभी वह मुझसे कहा करती थी कि मुझे केवल दो बातों की आकांक्षा है । उनमें से उसकी एक आकांक्षा तो यह थी कि वह मेरी गोद में मस्तक रखे-रखे प्राणत्याग कर सके । उसकी दूसरी आकांक्षा यह थी कि वह मीता-सावित्री के ही समान होकर मृत्यु के बाद उन्हीं के समीप स्थान प्राप्त कर सके । बेचारी की सारी आकांक्षाएँ जहाँ की तहाँ हो गईं ।

पुटी चुप होकर सुनती रही ।

नीलाम्बर ने अपने कंधे हुए हुए कण्ठ को साफ़ कर लिया । तब उसने कहा—तुम सभी लोगों का यही कहना है कि उसने अपराध किया है । मैं रोक नहीं सकता हूँ, इसीलिए मुँह बन्द किये हुए सुन लेता हूँ । परन्तु भला भगवान् को कैसे धोखा दूँ ? वे तो देख रहे हैं कि किसके अपराध का बोझा मस्तक पर लादे हुए वह बूब गई है ? तू ही बतला कि मैं किस मुँह से उसे अपराधिनी कहूँ ? उसे आशीर्वाद दिये बिना मैं कैसे रहूँ ? नहीं बहन, संसार की दृष्टि में वह चाहे कितनी ही कलङ्किनी क्यों न होवे, उसके विरुद्ध मेरा कोई अभियोग नहीं है । मैं किसी प्रकार को भी उसकी शिकायत नहीं कर सकता । अपने ही दोष के कारण मैंने उसे इस जन्म के लिए तो खो दिया पर भगवान् करें वह दूसरे जन्म में भी मुझे मिले ।

नीलाम्बर इससे आगे कुछ नहीं कह सका। इतना कहते-कहते उमका कण्ठ एकदम से रुद्ध हो गया। यह देखकर पुटो उतावली के साथ उठी। भाई के पास जाकर अञ्चल से उसके आँसू पोंछ देने का उद्योग उसने किया। परन्तु ऐमा करने का उद्योग करते-करते पुटो स्वयं रो पड़ी। एकाएक उसे ऐमा मालूम पड़ा, मानो भैया कहीं खिमके जा रहे हैं। यह देखकर पुटो ने रोते-रोते कहा—तुम जहाँ चाहो, वहाँ चलो भैया, किन्तु मैं तुम्हें एक दिन के लिए भी अकेले न छोड़ सकूँगी।

मुख ऊपर करके नीलाम्बर ने जरा-सा मुस्करा दिया।

विराज श्रीजगन्नाथ जी की राह से लौटी आ रही थी। एक दिन उसी राह से वह अपनी मृत्यु-शय्या की खोज में, त्रिमके बारे में निश्चय नहीं था कि वह कहाँ है, गई थी। उसके उस समय के जाने में और इस समय के उस ओर से लौट कर आने में कितना अन्तर था। इस समय वह घर जा रही थी। एक तो उमका शरीर यों ही बहुत निर्बल हो गया था, दूसरे चलते-चलते वह बहुत थक गई थी। इससे अत्यन्त ही कातर होकर उमका शरीर बार-बार यही प्रार्थना कर रहा था कि जरा सा विश्राम कर लो। परन्तु क्रान्त शरीर की यह प्रार्थना सुनकर विराज भुँभला उठी। रोग और दुःख-क्रेश से निरन्तर युद्ध करते-करते जर्जर हो गये शरीर की विश्राम के लिए दोन भाव से की गई पुकार को सुनकर विराज का मन क्रुद्ध हुए बिना नहीं रह सकता था। वह किसी भी कारण से कहीं क्षण भर के लिए भी विलम्ब करने की तैयार नहीं हुई।

इधर बहुत पहले से विराज को जो खाँसी आती थी, वह

अब यक्ष्मा के रूप में परिणत हो गई थी । इस बात का पता उसे चल गया था । इस कारण उसकी आशङ्का का अन्त नहीं था । रह-रह कर उसके मन में यही बात आती थी कि विलम्ब करने पर कहीं ऐसा न हो जाय कि मैं वहाँ तक न पहुँच पाऊँ ।

विराज को छुटपन से ही एक बात का बहुत दृढ़ विश्वास था । वह यह कि शरीर के पापरहित हुए बिना कोई भी स्त्री स्वामी के चरणों के समीप नहीं प्राण-त्याग कर पाती । वह इसी उपाय से मृत्यु से पहले अपने शरीर से पूछ कर जान लेना चाहती थी कि मेरे पाप का प्रायश्चित्त पूरा हो गया है या नहीं । उसका विश्वास था कि यदि मैं इस परीक्षा में उत्तीर्णता प्राप्त करने में समर्थ हो गई तो फिर निर्भय होकर बहुत आनन्दपूर्वक जीवन के उस पार बैठे-बैठे स्वामी की प्रतीक्षा करती रहूँगी । परन्तु दामोदर के इस ओर आने पर उसके हाथ-पैर फूल आये । मुख से रक्त अधिक मात्रा में गिरने लगा । अब पैर किसी तरह आगे की ओर बढ़ ही नहीं पाते थे । इससे हताश होकर विराज लौटकर एक वृक्ष के नीचे बैठ गई । डर के मारे वह थर-थर कांपने लगी । मन ही मन उसने कहा—यह कितना भयङ्कर अपराध है कि इतना करने पर भी मेरी अन्तिम आशा पूर्ण न हुई । मेरा यह जन्म तो निरर्थक हो ही गया, अब दूसरे जन्म के भी सफल होने की आशा नहीं है । अब मैं क्या करूँ ।

विराज को अब आशा नहीं रह गई थी । तो भी वह वृक्ष की छाया में लेटे-लेटे हाथ जोड़ कर स्वामी के चरणों में अपनी प्रार्थना समस्त दिन निवेदन करती रही ।

दूसरे दिन तारकेश्वर के आस-पास कहीं बाज़ार लगने के

थी । इससे प्रातःकाल से ही उस रास्ते से होकर बैलगाड़ियों चलने लगीं । साहस का सञ्चय करके विराज ने एक वृद्ध गाड़ीवान से प्रार्थना की कि कृपा करके मुझे भी अपनी गाड़ी पर बैठा लीलिये । उसका कष्ट कष्ट देखकर वृद्ध ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और उसने उसे तारकेश्वर पहुँचा दिया । विराज ने निश्चय किया कि यहीं मन्दिर के आस-पास पड़ी रहूँगी । यहाँ कितने ही लोग आते-जाते रहते हैं । सम्भव है कि किसी के द्वारा मैं छोटी बहू के पास तक समाचार पहुँचा सकूँ ।

कठिन से कठिन रोगों से ग्रस्त होकर कितने ही पुरुष और स्त्रियों मन्दिर को घेरे हुए इधर-उधर पड़ी हुई थीं । उन सब के बीच में आकर विराज ने बहुत दिनों के बाद ज़रा-सी शान्ति का अनुभव किया । उसने अनुभव किया कि इन्हीं लोगों के समान मैं भी व्याधिग्रस्त हूँ । मैं भी कामना से शून्य नहीं हूँ । इस प्रकार मैं भी अपनी व्याधि और कामना लिये हुए यहाँ पड़ी रह सकूँगी । किसी की भी दृष्टि मेरी ओर न आकर्षित होगी । किसी का भी अर्थहीन कौतूहल मुझे न चरितार्थ करना होगा । ये सब बातें सोचकर इस तरह के घोर संकट में पड़ी होने पर भी विराज को सुख का अनुभव होने लगा । किन्तु उसका रोग बड़ी तेज़ी से बढ़ने लगा । माव के महीने का बड़े कड़ाके का जाड़ा था । कुछ खाने की अलग व्यवस्था नहीं थी । निराहार रहकर ही उसने कुछ दिन बिता दिये । परन्तु अब भी किसी तरह दिन बीत सकेंगे इसकी आशा उसे नहीं रह गई । किसी के आने की भी सम्भावना नहीं रह गई । अब उसे एकमात्र 'मृत्यु' का भरोसा

रह गया । मृत्यु का स्वागत करने के ही लिए अब वह अपने आप को तैयार करने लगी ।

उस दिन आकाश मेघों से आच्छादित हो उठा था । सौंभ होने को अभी काफ़ी विलम्ब था, तो भी अँधेरा मालूम पड़ने लगा था ? पहले वक्त विराज के मुख से रक्त बहुत अधिक गिरा था । इससे उसका जीर्ण-शीर्ण शरीर एकदम से ही अशक्त हो गया था । मन ही मन उसने कहा—कदाचित् आज ही सारा मामला खतम हो जायगा । इससे उसी समय से मन्दिर के पिछवाड़े मुँह छिपाये हुए वह पड़ी थी । दोपहर को ठाकुर जी की पूजा हो जाने के बाद और दिनों की तरह वह उठ कर नमस्कार नहीं कर सकी । आज उसने अपने मन में ही देवता को नमस्कार किया ।

इतने दिनों तक विराज केवल स्वामी के ही चरणों में अपनी प्रार्थनायें निवेदित करती आ रही थी । वह नासमझ नहीं थी । उसने जो कार्य्य कर डाला था, उसके कारण इस जन्म में वह स्वामा से किसी प्रकार की आकांक्षा नहीं रखती थी । वह केवल इतना चाहती थी कि मेरा पर-जन्म का भी अधिकार नष्ट न हो जाय । बिना समझे-बूझे उसने जो कुछ अपराध कर डाला था, उसका दण्ड भोगने को इस जन्म में कहीं अवशिष्ट न रह जाय कि उसे दूसरे जन्म में भी भोगना पड़े । उसकी केवल इतनी ही भिन्ना थी । किन्तु दिन के अवसान के साथ ही साथ उसकी चिन्ता की धारा एक विचित्र ही पथ पर लौट गई । अब विराज के मन में भिन्ना का भाव नहीं रह गया । अब तो उसमें विद्रोह का भाव दिखाई पड़ा । समस्त चित्त को व्याप्त करके एक

अपूर्ण अभिमान का सुर अनिर्वचनीय माधुर्य के साथ बज उठा। उसी में मग्न हो कर मन ही मन वह बारबार कहने लगी—तब क्यों तुमने कहा था ?

विराज की अनजान में ही उसका बायाँ हाथ, जो पंगु हो गया था, न जाने किस समय खिसक कर रास्ते में पड़ गया था। किन्तु उसे उसका कुछ पता नहीं चल सका। किन्तु एकाएक उसी के ऊपर एक कठिन व्यथा प्राप्त कर के स्पष्ट शब्द में एक कराहने की आवाज़ उसने निकाली। उस मार्ग से लोगों का आना-जाना बराबर लगा ही रहता था। दृष्टि न पड़ सकने के कारण जिस व्यक्ति ने इस शक्तिहीन और निर्बल हाथ पर पैर रख दिया था, वह बहुत ही लज्जित हुआ। अपनी इस असावधानी के कारण उसने अपने अन्तःकरण में बहुत ही अधिक व्यथा का अनुभव किया। लौट कर वह खड़ा हो गया और बोला—आहा ! कौन है भाई, इस तरह रास्ते के किनारे पर पड़ा है। मुझसे बड़ा अन्याय हो गया। अधिक तो नहीं लगा ?

निमेष मात्र में मुख पर का कपड़ा हटा कर विराज ने आँख खोल कर देखा। बाद को एक अव्यक्त ध्वनि करके वह चुप हो गई। वह व्यक्ति नीलाम्बर था। एक बार झुक कर ज़रा-सा देखने के बाद वह वहाँ से हट गया।

कुछ क्षण के बाद सूर्य अस्त हो गये। पश्चिम के आकाश में मेघ नहीं थे। दिक्-चक्रवाल में बिखरी हुई स्वर्ण-वर्ण की आभा मन्दिर की चूड़ा पर और वृक्षों की चोटियों पर छिटकी हुई थी ! कुछ दूरी पर खड़े हो कर नीलाम्बर ने पुटी से कहा—देखो बहन, वहाँ जो एक निर्बल और बीमार-सी स्त्री पड़ी हुई है,

उसे मैंने बड़े ज़ोर से कुचल दिया है। उसे यदि तू कुछ दे सके तो अच्छा है। शायद यह कोई भिखारिन होगी।

पुटी ने देखा तो वह स्त्री एक दृष्टि से उन्हीं लोगों की ओर ताक रही थी। इससे धीरे-धीरे उसके समीप आकर वह खड़ी हुई। उसके मुख का कुछ अंश वस्त्र से ढका हुआ था। तो भी पुटी को ऐसा जान पड़ा मानो उसने यह मुख कभी देखा है। उसने पूछा—क्यों जी, तुम्हारा घर कहाँ है ? “सप्त ग्राम में” यह कह कर वह स्त्री हँसी।

विराज की सब से मधुर सामग्री थी उसके मुख की मुसकान। संसार में कदाचित् ही ऐसा कोई व्यक्ति होगा, जो वह मुसकान एक बार देख लेने पर फिर कभी उसे भूल जाता। “अजी, ये तो भाभी जी हैं !” यह कह कर पुटी तत्काल ही उस जीर्ण-शीर्ण शरीर के ऊपर लोट पड़ी और उसके मुख पर मुख रख कर रोने लगी।

नीलाम्बर कुछ दूरी पर खड़े-खड़े देख रहा था। वह कोई बात नहीं सुन सका था। तो भी उसने सब कुछ समझ लिया। अब वह समीप आकर खड़ा हुआ। एक बार पैर से लेकर सिर तक ध्यानपूर्वक देख लेने के बाद शान्त कण्ठ से वह बोली—यहाँ रो मत पुटी, उठ।

यह कह कर नीलाम्बर ने बहन को बगल कर दिया। बाद को स्त्री के रक्त-माँस से हीन शरीर को छोटे से बच्चे की तरह गोद में उठा कर तेज़ी से पैर बढ़ाता हुआ जहाँ वह ठहरा था, वहाँ को चला गया।

X

X

X

चिकित्सा के लिए, विराज को किसी उत्तम और स्वास्थ्य-कर स्थान में ले जाने के लिए बड़ा प्रयत्न किया गया। कहते-कहते लोग हार गये, परन्तु विराज किसी प्रकार भी इसके लिए तैयार नहीं हो सकी। उसने स्पष्ट शब्दों में कह दिया कि अब मैं घर छोड़ कर कहीं भी न जाऊँगी।

पुटी को आड़ में बुला कर नीलाम्बर ने कहा—बहन, अब यह जोवित ही कितने दिनों तक रहेगी? यह जहाँ जिम तरह रहना चाहे, वहीं इच्छानुसार इसे रहने दे। तुम लोग अब इससे किसी भी विषय के लिए आग्रह मत करो।

विराज ने पहले-पहल तारकेश्वर में स्वामी की गोद में मस्तक रख कर अपनी प्रार्थना निवेदित की। अनुनयपूर्ण स्वर में उसने कहा—मुझे घर ले चलो और मेरी खाट पर मुझे सुला दो। घर की ओर, घर की प्रत्येक सामग्री की ओर तथा स्वामी की ओर विराज का चित्त किस प्रकार लगा हुआ था, उसे इन सबसे कितनी अधिक ममता थी, इस बात को यथार्थ रूप से वही अनुभव कर पाता जो इन सब के प्रति विराज के मनोभाव को देख पाता और इस विषय को यथार्थ रूप से जान लेने पर मनुष्य रोये बिना नहीं रह सकता था। रात-दिन के बीच में ऐसा अधिकांश समय होता जब कि ज्वर के वेग के कारण प्रायः बेहोशी हालत में पड़ी रहती। परन्तु ज़रा-सा ही तबीअत में हल्कापन आने पर वह घर की प्रत्येक वस्तु को बहुत ही ध्यान पूर्वक देखा करती।

नीलाम्बर स्त्री की रोग-शय्या को छोड़कर प्रायः कहीं भी नहीं जाया करता था। नेत्रों में जल भरे हुए वह प्रायः यह

प्रार्थना किया करता—हे भगवान्, तुम बहुत दण्ड दे चुके हो। अब इसे क्षमा कर दो। मनुष्य परलोक के लिए यात्रा कर रहा है, उसे इतनी शक्ति दे दो कि वह इस लोक के मोह को दूर करने में समर्थ हो जाय।

जो विराज गृह का परित्याग करके एक दिन चली गई थी, उसी गृह की ओर उसका इतना प्रबल आकर्षण देखकर नीलाम्बर का हृदय आश्चर्य से अभिभूत हो उठा करता था। उसे यहाँ आये हुए दो सप्ताह व्यतीत हो चुके थे। कल से उसे सन्निपात-सा हो गया था। आज समस्त दिन अट-संट बकने के बाद अभी थोड़ी देर पहले वह सो गई थी। सँभ हो जाने के बाद आँख खोल कर उसने देखा। काफ़ी देर तक रोने-धोने के बाद पुटी पैरों के पास पड़ कर सो गई थी। छोटी बहू सिरहाने बैठी हुई थी। उसे देखकर विराज ने कहा—छोटी बहू हैं क्या जी ?

जेठानी के मुख पर झुक कर छोटी-बहू बोली—हाँ दादी, मैं मोहिनी हूँ।

“पुटी कहाँ है ?”

हाथ से पुटी की ओर संकेत करके छोटी बहू ने कहा—
तुम्हारे पैरों के पास सो रही है।

“वे कहाँ है ?”

“उस कमरे में पूजा कर रहे हैं।”

“तो मैं भी पूजा कर लूँ।”—यह कह कर विराज मन ही मन जप करने लगी। बड़ी देर के बाद दाहिने हाथ से ललाट का स्पर्श करके उसने नमस्कार किया। अन्त में क्षण भर तक छोटी बहू के मुख की ओर ताकते रहने के बाद वह धीरे-धीरे

बोली—सम्भवतः आज ही मैं चल रही हूँ बहन । परन्तु मेरी कामना है कि फिर तुझसे मुलाकात हो, मैं फिर तुम्हें इतने समीप पा सकूँ ।

विराज का समय अब बिलकुल ही व्यतीत हो चुका है, इस बात का पता लोगों को कल ही चल गया था । इससे उसके मुख स यह बात सुन कर छोटी बहू चुपचाप आँसुओं की धारा बहाने लगी ।

विराज को अब अच्छी तरह ज्ञान हो गया था । अपना कण्ठ स्वर धीमा करके चुपके से वह बोली—छोटी बहू, क्या तू ज़रा देर के लिए सुन्दरी को बुला देगी ?

आँसुओं से रुँधे हुए स्वर में छोटी बहू ने कहा—अब उसे बुलाकर क्या करोगी दीदी ? वह न आवेगी ।

“वह आवेगी री, आवेगी । ज़रा देर के लिए उसे बुला दे, जिसमें कि उसे क्षमा करके मैं आशीर्वाद दे जाऊँ । अब मुझे किसी के ऊपर किसी प्रकार का क्रोध का भाव नहीं है, किसी के ऊपर किसी प्रकार का लोभ नहीं है । भगवान् ने मुझे क्षमा करके जब मेरे स्वामी को मेरे पास लौटा दिया है, तब मैं भी सब को क्षमा करके ही यहाँ से जाना चाहती हूँ ।”

रोते-रोते छोटी बहू ने कहा—यह कैसी क्षमा है दीदी ! बिना अपराध के इतना दण्ड दे चुकने पर भी उनकी मनोवाञ्छा पूर्ण नहीं हुई है । वे तुम्हें भी लेने पर तुले हुए हैं । तुम्हारा एक हाथ तो उन्होंने ले ही लिया है । इस अवस्था में भी यदि वे तुम्हें छोड़ जाते—

विराज हँस पड़ी। वह बोली—तू क्या करती मुझे लेकर गाँव भर में अकीर्ति फैली हुई है। मेरे जीवित रहने से अब कोई लाभ नहीं है बहन !

ज़ोर देकर छोटी बहू बोल उठी—लाभ है दीदी ! गाँव में जो अकीर्ति फैली हुई है, तुम्हारे ऊपर लोग जो कलङ्क लगाते हैं, वह तो मिथ्या है। उससे हम लोगों को भय नहीं है !

“तुम लोगों को भले ही भय न हो, किन्तु मुझे है। मेरे नाम पर जो कलङ्क फैला हुआ है, वह मिथ्या नहीं है। वह बिलकुल सच है। छोटी बहू, मेरा अपराध चाहे कितना ही साधारण क्यों न हो, किन्तु इस तरह की घटना हो जाने के बाद हिन्दू के घर में स्त्री को स्थान नहीं मिल पाता। तुम लोगों का कहना है कि भगवान् को दया नहीं है। किन्तु—

विराज की यह बात समाप्त होने से पहले ही पुटी प्रबल बेग से बहते हुए आँसुओं से रुँधे हुए स्वर में चिल्लाकर बोल उठी—ओह, बहुत बड़ी दया है भगवान् की !

पुटी अभी तक चुपचाप रो रही थी, साथ ही वह ये सभी बातें सुन रही थी। उससे और न सहा गया, इससे वह इस तरह बोल उठी। रोते-रोते पुटी ने कहा—उनमें लेशमात्र भी दया नहीं है, लेशमात्र भी न्याय करने का भाव नहीं है। जो लोग वास्तव में अपराधी हैं, उन्हें कुछ नहीं हुआ। वे दण्ड हम लोगों को दे रहे हैं और बहुत कठोर दण्ड दे रहे हैं।

पुटी को इस तरह आँसुओं की झड़ी लगाते देखकर विराज मौन भाव से मुस्कराने लगी। मुस्कान उसकी वह कितनी मधुर,

कितनी सुहृदयतापूर्ण थी। बाद को कृत्रिम क्रोध के स्वर में वह बोली—चुप रह मुँहजली, चिल्ला मत।

दौड़ती हुई आकर पुटी विराज के गले से लिपट गई और वह ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगी—तुम मरो न भाभी ! तुम्हारा वियोग हममें से किसी से भी महा न जायगा। तुम दवा खाओ और किसी स्वास्थ्यकर स्थान में चलकर रहो। भाभी, मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, दो दिन और बच जाओ।

पुटी का रोना सुनकर नीलाम्बर ने पूजा करना बन्द कर दिया। भय से काँपते हुये चरणों से समाप आकर वह सुनने लगा। पुटी के मुख से ही जो कुछ निकलता, वही कह कर वह भाभी से और दो दिन जीवित रहने के लिए बार-बार अनुरोध करने लगी। अब विराज की दोनों ही आँखों से दो-दो बूँद आँसू गिर पड़े। छोटी बहू ने सावधाना के साथ जेठानी की आँखें पोंछ दीं। बाद को उसने पुटी को खींच लिया। अन्त में विराज तत्काल ही उसकी गोद में मुँह छिपाकर, सबको रुलाती हुई फूल-फूल कर रोने लगी। लगातार बड़ी देर तक रो चुकने के बाद विराज मग्न कण्ठ से कहने लगी—रोओ मत पुटी, सुनो।

नीलाम्बर आड़ में खड़ा होकर सुनने लगा। विराज बिलकुल होश में आकर बातें कर रही थी इससे नीलाम्बर ने समझ लिया कि अब इसकी यंत्रणा का अवसान हो गया है।

विराज कहने लगी—पुटी, बिना समझे उन्हें दोष मत दो। नारायण प्रत्येक व्यक्ति के सम्बन्ध में कितने सूक्ष्म भाव से विचार किया करते हैं। इस अवस्था में भी उन्होंने मुझ पर किस प्रकार का दया का व्यवहार किया है, इस बात को आज मुझसे अधिक

कोई नहीं जानता । मरना ही मेरे लिए जीवित रहना है । यह बात मेरे जाने के बाद ही तुम लोगों की समझ में आ सकेगी । इसके सिवा तुम्हारा जो यह कहना है कि उन्होंने एक हाथ और एक आँख ले ली है, वह तो दो दिन आगे-पीछे जाती है । किन्तु इतना ही दण्ड दे कर उन्होंने तुम लोगों को गोद में लौटा दिया है, इस बात को तुम लोग किस तरह भुला दोगी पुटी ?

“खाक लौटा दिया है ।” यह कह कर पुटी रोने लगी ।

भागवान् की दया और सूक्ष्म विचार के सम्बन्ध में पुटी एक अक्षर भी विश्वास न कर सकी । इसके विपरीत वह तो यहाँ समझने लगी कि इस सम्बन्ध में भगवान् ने आदि से अन्त तक घोर अन्याय और अत्याचार किया है । ज़रा देर के बाद विराज बाला—पुटी, तेरे भैया कहाँ हैं री, ज़रा उन्हें बुला तो दे । मैंने उन्हें बड़ी देर से नहीं देखा ।

नीलाम्बर समीप ही दीवाल की आड़ में था ? उसके आते ही छोटी बहू बिस्तरा छोड़ कर हट गई । और कुछ दूर जाकर खड़ी हुई । नीलाम्बर सिरहाने बैठ गया । उसने स्त्री का दाहिना हाथ बड़ी सावधानी के साथ अपने हाथ में ले लिया और वह नाड़ी की परीक्षा करने लगा । सचमुच अब विराज का कुछ नहीं था । नीलाम्बर ने यह पहले से ही अनुमान कर लिया था कि ज्वर के आवेग में ही यह ये सब बातें कह रही है और सम्भवतः इस ज्वर का अवसान होते ही सारे मामले का अन्त हो जायगा । अब नाड़ी देखने पर भी उसकी समझ में यही बात आई ।

विराज बोली—तुम खूब हाथ देखना जानते हो ! यह कह कर वह हँसी ।

एकाएक इस तरह का मर्मान्तिक परिहास उसने कर डाला । हाथ देखते ही वेदना के मारे नीलाम्बर का मुख एकदम से निस्तेज हो गया । लोगों ने यही अनुभव किया कि इस परिहास के ही कारण इनके हृदय पर इस तरह का आघात लगा है । स्वामी के इस परिवर्तित भाव को सम्भवतः विराज ने भी देखा । अनुत्ताप करती हुई वह तुरन्त ही बोल उठी—नहीं, नहीं, मेरे कहने का मतलब यह नहीं है । सचमुच बतलाओ अब कितनी देरी है !

यह कह कर विराज ने प्रयत्न करके अपना मस्तक स्वामी की गोद में रख दिया और बोली—सब के सामने एक बार तुम फिर बतला दो कि तुमने मुझे क्षमा कर दिया है या नहीं ! नीलाम्बर ने रुँधे हुए स्वर में कहा—कर दिया है । यह कह कर उसने हाथ से आँखें पोंछ डाली ।

विराज क्षण भर तक आँखें मूँदे रही । बाद को मृदु कण्ठ से वह कहने लगी—इतने दिनों तक मैं गृहस्थी संभालती रही हूँ । इस बीच में मुझसे कितनी भूलें हुई होंगी, मैंने तुम लोगों के प्रति कितना अन्याय किया होगा । इस लिए छोटी बहू, मेरी बात सुनो । पुटी, तुम भी सुन ला ननद । मेरी सब भूलें, मेरा सारा न्याय-अन्याय, भूल कर आज तुम सभी लोग मुझे विदा दो । आज मैं चल रही हूँ ।

इतना कह कर विराज ने हाथ बढ़ाया । वह स्वामी का चरण तल खोजने लगी । नीलाम्बर ने मस्तक के नीचे की तकिया ठेल कर एक बगल कर दी और उसके स्थान पर उसने अपना चरण रख दिया । अब स्वामी के चरण की धूलि बार-बार मस्तक से लगाते-लगाते विराज कहने लगी—इतने दिनों से मैं जो तरह-

तरह के दुःख सहन करता आ रहा हूँ, आज वह सब साक्ष्य हुआ । अब मेरे लिए चिन्ता की कोई बात न रही । मेरा शरीर शुद्ध है, पापरहित है । अब मैं चलती हूँ, चल कर खड़ी रहूँगी ।

इतना कह कर विराज ने करवट बदली । स्वामी की गोद में मस्तक छिपा कर स्पष्ट स्वर में वह बोली—इस तरह मुझे लिये रहो । कहीं जाओ मत ।

इतना कह कर वह चुप हो गई । उसे और कुछ कहने की शक्ति भी नहीं रह गई थी । वह बिलकुल ही श्रान्त हो गई थी ।

मुँह सुखाये हुए सबलोग बैठे रहे । रात्रि में बारह बजे से विराज अंट-संट बकने लगी । नदी में जब वह कूदी थी, उस समय की बातें उसने कही, अस्पताल का वृत्तान्त बतलाया, निरुद्देश्य भाव से भटकने का हाल बतलाया । किन्तु इस सारी गाथा में आदि से अन्त तक केवल यही एक बात भरी थी कि मुहूर्त्त भर की भूल के कारण उस सती साध्वी का अत्यन्त ही उग्र और एकाग्र पति-प्रेम किस तरह उसके हृदय को निरन्तर दग्ध करता रहा ।

इधर थोड़े दिनों से, जब कि विराज लौट कर आई थी उसके सामने ही बैठ कर नीलाम्बर को भोजन करना पड़ता था । उस दिन रह-रह कर कभी पुटी को पुकार कर, कभी छोटी बहू को पुकार कर बकने लगी । बाद को प्रातःकाल उसकी सारी बक-झक को रोक कर ज़ोर-ज़ोर से साँस चलने लगी । उसने फिर आँख नहीं खोली । वह फिर नहीं बोली । स्वामी की गोद में मस्तक रखे हुए सूर्योदय के साथ ही साथ उसने अपनी जीवन-लीला का संवरण कर लिया । इस प्रकार दुःखिनी के दुःख का अवसान हो गया ।

इति

नवीन पुस्तकें

निबंध

तुम्हारी क्षय—राहुल सांकृत्यायन ॥१॥

दिमागी गुलामी— „ „ ॥१॥

कहानी

बोल्गासे गंगा—राहुल सांकृत्यायन ४॥

सतमीके बच्चे—राहुल सांकृत्यायन ११॥

दर्शन

दर्शन-दिग्दर्शन—राहुल सांकृत्यायन १२॥

बौद्ध-साहित्य

बौद्ध-दर्शन—राहुल सांकृत्यायन २॥

प्रमाणवातिकम्—राहुल सांकृत्यायन ३०॥

जीवन-साहित्य

नये भारतके नये नेता—राहुल सांकृत्यायन ५॥१॥

राहुलजीका अपराध १॥२॥

साम्यवाद

साम्यवाद ही क्यों—राहुल सांकृत्यायन ॥१॥

उपन्यास

जय यौधेय—राहुल सांकृत्यायन ४॥

शैतानकी आँख— „ १॥१॥

नीलमाटी—चतुरसेन शास्त्री ॥१॥

दो उपन्यास—शरत्चन्द्र	१॥)
अम्बपाली—रामरतन भटनागर	२)

राजनीति

*सोवियत् भूमि—राहुल सांकृत्यायन	५)
सोवियत् शासनका इतिहास ,,	४)
भागो नहीं (दुनियाको) बदलो ,,	५)
अजेय चीन—श्रीकृष्णदास एम० ए०	॥=)
साम्राज्यवादी जापान—श्रीकृष्णदास एम० ए०	१॥)
राष्ट्रभाषा का प्रश्न—महात्मा गांधी	॥॥)

कविता

ताण्डव—रामरतन भटनागर	१॥)
अँगड़ाई—‘शील’	१॥)

विज्ञान

विश्वकी रूपरेखा—राहुल सांकृत्यायन	५)
स्वप्न-विज्ञान—डा० गिरीन्द्र शेखर	१=)

नाटक

मेहरारुन कै दुरदसा—राहुल बाबा	॥=)
नइकी दुनिया ,, ,,	॥=)
जोंक ,, ,,	॥=)

किताब महल • प्रकाशक • इलाहाबाद

